ॐ

श्रीअकलंक-नाटक

सम्पादक

सिद्धसेन जैन गोयलीय

प्रधानाध्यापक जैन पाठशाला,

रिवाड़ी

भू० पू० उपदेशक भा० दि० जैन महासभा,

प्रकाशक

ला० छीतरमल नेमीचन्द जैन बजाज एण्ड को,

जैन-पाठशाला रिवाड़ी (गुड़गांवा)

प्रथम बार 1000	दीपमालिका वीरनि० सं० २४५४	मूल्य ।=)

* समर्पण *

प्रिय पाठक वृन्द !

अकलङ्क-नाटक भेट में है,
आपकी अब लीजिए।
पढ़कर इसे बन वीर-धर्मी
धर्म उन्नति कीजिए॥

दास:—
सिद्धसेन जैन

आभार

स्व० श्रीमान् माननीय बा० बिहारीलाल जी "चैतन्य" हेडमास्टर गवर्नमेन्ट हाई स्कूल बाराबंकी, बुलन्दशहरी तथा मास्टर छोटेलाल जी अध्यापक जैन पाठशाला, रिवाड़ी का अति आभार मानता हूं आपने मुझे सहायता देकर अनुगृहित किया है।

भवदीय.

दो शब्द

"प्राण जाय पर वचन नहिं जाय"

धर्म-वीर वाचक वृन्द !

आज आप के समक्ष "धर्म-वीर श्री महाकलङ्क और धर्मार्थ प्राण त्यागन करने वाले श्री निष्कलंक" का कुछ जीवन परिचय रखते हुए आप से आशा करता हूं कि इसे अपना कर धर्मार्थ प्राण त्याग का पाठ सीखेंगे।

भूषण-भवन
फिरठल
मेरठ वाला

भवदीय,
सिद्धसैन जैन गोयलीय

॥ श्री ॥

* अकलंक-नाटक *

अङ्क १—दृश्य १

[रङ्ग भूमी]

पात्रों का गाना

दयामय ! दीजे यह वरदान ॥टेक॥

हम बालक हैं निपट अज्ञानी, दीजे विद्या दान ।

विद्याकी हो गूंज जगतमें, पावें सब सन्मान ॥दया० ॥१

धर्म जाति की उन्नति होवे, फैले नित विज्ञान ।

धर्म रखने को प्राण भी जावें, मानें हर्ष महान ॥दया०॥२

प्राण जांय पर वचन नहिं जावें, श्रीअकलंक समान ।

"सिद्ध" करें निज कारज सारे, कहकर श्री भगवान ॥३

दयामय ! दीजे यह वरदान ।

बात चीत।

मोहन–भाई पूरण! तुमने कहा था कि प्रतिदिन किसी न किसी पवित्रात्मा का जीवन आप का सुनावेंगे और दिल बहलायेंगे।

पूरण–वाह! वाह!! दिल बहलायेंगे या अपनी जाति धर्म और देश की रक्षार्थ प्राण त्याग करना सीखेंगे?

आनन्द–प्राण त्याग! कैसा प्राण त्याग?

पूरण–मित्रवर! बहुत चूके, क्या आप ने श्रीअकलंक और निष्कलंक का नाम नहीं सुना? और उस के गुणों को नहीं गुना?

आनन्द–वही अकलंक! जो बौद्ध-मत के उन्नति काल में हुए और तारा देवी··· ··· ··· ··· ··

पूरण–बस! बस!! बस!!! और किस को कहता! क्या और में ऐसा साहस देखा जो देवी का पराभव कर जैन धर्म की पताका उड़ाता?

प्रभाकर—क्या आप की ज्ञान गोष्ठी में हम भी आ सकते हैं और धर्मोन्नति के लिए पाठ सीख सकते हैं ?

पूरण—क्यों नहीं ? खुशी से आइये । और जाति-धर्म की उन्नति का उपाय सोचिये । सचमुच आप जैसे वीरों ही की कमी है और इसी से धर्म की नाव थमी है ।

प्रभाकर—अच्छा तो। हमें बतलाये कि अकलंक कौन थे और किस तरह उन्होंने धर्म पताका उड़ाई और सारी दुनियां से पाखंड को भगाई ।

आनन्द—अच्छा बैठ जाओ ! हम उन्हीं अकलंक स्वामी का स्तवन उनका एक २ कर्तव्य दिखायेंगे ।

[सब मिलकर अकलंक स्वामी का गुणगान करते हैं]

अकलंक जगत में आवो आकर फिर धर्म बतावो ।
हम भवसागर मझधारी, तुम हम को पार लगावो ॥
समझा नहीं रूप धरम का, तुमही आकर समझाओ ।
हम सोये पड़े हुए हैं, आकरके आप जगाओ ॥

फैले पाखंड जगत में, उन को अब दूर कराओ ।
जो 'सिद्ध' रूप शुद्धातम, सो ही हमको बतलाओ ॥

अङ्क १—दृश्य २

जिन मन्दिर

मन्त्री पुरुषोत्तम, अकलङ्क और निष्कलङ्क भगवद्भक्ति में लीन हुए गाते हैं

अघतम नाशक पुण्य प्रकाशक,
ज्ञान दिवैया तुम ही तो हो ।
बंध प्रहारक दुःख निवारक,
सुक्ख दिवैया तुम्हीं तो हो ॥
कर कर्मों का नाश आपने, मुक्ति वधू को वरण लिया ।
देकरके उपदेश भविन को, पार लंघैया तुम्हीं तो हो ॥१
ज्ञान उजागर समता धारी, हो तुम जीवों के हितकारी ।
जो २ दुःख जीवपर आते, उनके हटैया तुम्हीं तो हो ॥२
आश्रित होकर जीव आप के, भवसागर तिर जाते हैं ।

करुणानिधि ! हे दीन बंधु अब, दया धरैया तुम्हीं तो हो ।२
विनती यही हमारी स्वामिन् करलो हमको आप समान ।
'सिद्ध' करो सब कार्य हमारे, आश पुरैया तुम्हीं तो हो ॥

[मुनि महाराज पर दृष्टि पड़ती है]

तीनों–श्रीगुरु महाराज के चरण कमलों में भक्ति पूर्वक बारम्बार साष्टांग प्रणाम हो ।

(तीनों का नमस्कार करना)

मुनि–धर्म वृद्धि हो, सुख सिद्ध हो ।

तीनों–महाराज ! हमें कृपाकर नंदीश्वर व्रत महात्म्य कहिए ।

मुनि–पुरुषोत्तम ! वास्तव में जैसा तुम्हारा नाम है वैसे ही तुम गुण सम्पन्न भी हो । नंदीश्वर व्रत महात्म्य सुनो ।

दोहा–कार्तिक फाल्गुण साढ के अन्त आठ दिन मांहि ।
नंदीश्वर सुर जात हैं हम पूजें इहि ठांहि ॥
नंदीश्वर व्रत आचरैं कटैं करम के फन्द ।
बहुत कहां तक मैं कहूं हो जावें निर्द्वंद ॥

और-गीत

देव सारे पूजते हैं मग्न होकर तान में ।
भाव सेती पूजिए तो रोग जावें थान में ॥
धन धान्य सम्पत्ति प्राप्त होवे पुत्र अरु तिया घनी ।
लोक में यश की पताका और फहराये घनी ॥

सोरठा

नंदीश्वर श्री जिन धाम, प्रतिमा महिमा को कहै ।
"द्यानत" लीनों नाम, यही भगति सब सुखकरै ॥

तीनों—धन्य हो महाराज ! तारण-तरण जहाज !
पुरुषोत्तम—महाराज ! नंदीश्वर व्रत महात्म्य सुना अब इस के उपलक्ष्य में आप मुझे ८ दिन का ब्रह्मचर्य व्रत दीजिये और आप के भक्त जो अकलंक व श्री निष्कलंक बैठे हैं इन्हें भी इस व्रत से विभूषित करिये ।
मुनि—पुरुषों में श्रेष्ठ ! पुरुषोत्तम !! तुम्हें धन्य है जो व्रत

गृहण की ठानी है और पाप की करी हानि है।
अच्छा तुम्हारे व्रत पलनेमें भगवान सहायक हों।

।(ऐसे कह कर व्रत ग्रहण कराते हैं)

तीनों–(व्रत गृहण करके) अच्छा गुरु महाराज के चरणों
में बारम्बार नमस्कार है।

[तीनों का उठाना और भगवान की प्रार्थना करना]

प्रभो ! तुम हो कृपा भंडार ॥ टेक ॥
दीनन के प्रतिपालक तुम हो, हो वांछित दातार।
हम अनाथ कर्मों ने घेरे, लीजे हमें उबार ॥ १ ॥
शिक्षा से हम भूषित होवें ब्रह्मचर्य आधार।
दुर्गुण सारे जांय निकल कर, रहे गुणावलि सार ॥१
धर्म जाति की उन्नति करके, बनें वीर हम सार।
जैसा भीतर वैसा बाहर, भाव होय इकसार ॥ ३
बहु विनती क्या करें प्रभु जी जानत हो संसार।
नाव उतारो पार हमारी, करता 'सिद्ध' पुकार ॥ ४ ॥

[मन्दिर जी से प्रस्थान]

(इसी तरह पूजन भक्ति में ८ दिन बीत जाते हैं)

अङ्क १—दृश्य ३

[मंत्री पुरुषोतम का महल, मंत्री और उसकी स्त्री की बात चीत]

मंत्री—हे प्रिये ! ये कुंवर अपनी उम्र पर आगये हैं और शादी के योग्य हो गये हैं। मेरी राय तो यह है कि इन के फेरे फेरें और अपना कर्तव्य अदा करें। नीति में भी यह बात है कि लड़के का, युवावस्था प्राप्त होने पर ब्याह कर देना चाहिए।

स्त्री—प्राणनाथ! मैं भी आपसे कहने को तैयार थी परन्तु आप के न आने से कहने को लाचार थी। अस्तु! जो हो आज ही पंडित जी के पास जाकर उनको ब्याह मुहूर्त्त सुजवा लाइये और मंगल गीत गवाइये॥

मंत्री—अच्छा प्रिये! बैठक में जाता हूं और बच्चों से भी कह दूं कि उनकी शादी होने वाली है और घर में घर वाली आने वाली है॥

(मंत्री का प्रस्थान)

स्त्री (माता–अकलंक) का गाना।

(सोहना)

शुभ कौनसा वह दिवस होगा! लाल मेरे न्हायेंगे।
मलकर उवटना बैठ पटड़ा हाथ महंदी रचायंगे।
उन हाथ में कंगना बंधे शीस सेरा से सजे।
हो मौड़ क्या हो मुकुट सिर पर हों बराती सजधजे॥
बहु पालकी घोड़े रथों से हाथियों के शोर से।
अरु रंग विरंगे वाजे होवें वोलते घनघोर से॥
प्रिय लाल मेरे जब चढ़ेंगे सजधजी गज पीठ पर।
शुभ गीत गावें किन्नरीसी औरतें तुक जोड़ कर॥
श्वसुरे के अपने जायंगे अपनी वधू को लायंगे।
आवेंगी रथ में वैठ जब, तब खुशी बहुत मनायेंगे॥

रानी–(मनमें) मैं भी वैठक में चलती हूं और पंडितजी की भेंट थाल में रख कर ले चलती हूं क्योंकि प्राण नाथ! अपनी ही वैठक में पंडित जी को

बुलावेंगे और वहीं मुहूर्त निकलवावेंगे ।

रानी का प्रस्थान ।

विदूषक का आना और पबलिक से कहना ।

विदूषक–अहा ! हा !! हा !!! आपने रानी जी की सोहिनी सुनी, यों समझती हैं कि वधू आने में कुछ देर ही नहीं । यह भी गुड़ियों का खेल है !! कितनी रीझ रही हैं !!! मानों सचमुच ही बहू आरही हैं ॥

(प्रस्थान)

अङ्क १–दृश्य ४

(पुरुषोत्तम मन्त्री की बैठक–पुरुत्तम का बैठा नज़र आना और पुत्रों का प्रवेश)

अकलंक व निष्कलंक–पिता जी सविनय प्रणाम हो !

पिता–चिरंजीवो !

पुत्र–पिता जी, आज उदासी या चिंतासी मुंह पर क्यों है?

पिता–अरे ! चिन्ता क्या? जावो शीघ्र ही पंडित मेहरचन्द

जी को बुला लाओ।

माता का आना और एक दम बीच मे ही बोल उठना-

लो ! मैं तो शुभ मुहूर्त की सामग्री और पंडित जी की भेंट भी ले आई !

पुत्र-पिता जी ! क्या हमें पाठशाला में भेजने का मुहूर्त निकलवायेंगे और विद्वान् बनायेंगे !!

पिता-क्या तुम्हें हमारा विचार मालूम न हुआ ?

पुत्र-पिता जी ! आपने कब कहा था ?

पिता-पुत्रो ! यदि मेरा विचार तुम्हें मालूम नहीं है तो अब बताता हूं "मेरा इरादा तुम्हारी शादी करनेका हो रहा है। इसी वास्ते तो घी खाण्ड खरीदा जारहा है !

पुत्र-(आश्चर्यसे) शादी ! पिता जी शादी !! शादी क्या बला ? बिल्ली और चूहे का एक खिला !!

शेर:-

पिता-पुत्रो ! किधर को ध्यान है, अब क्या पता तुम को नहीं

शादी तुम्हारी मैं करूं क्या ? ज्ञान तुम को है नहीं ?
रंग में क्यों भंग करते यह उचित तुम को नहीं ?
प्यारे ! सुपुत्रो ! जिगर टुकड़ो !! बात यह कैसी कही ?

(वार्ता)

ऐ पुत्रो ! आज कैसी बात कर रहे हो ? रंग में भंग क्यों डाल रहे हो ?

पुत्र–पिता जी ! रंग में भंग कैसा ? क्या आपने फाल्गुन की अष्टाह्निका के प्रथम दिन मुनि महाराज के सामने श्रीजिन मंदिर में प्रतिज्ञा नहीं दिलवाई थी कि हम ब्रह्मचर्य व्रत पालन करें । क्या आप भूल गये हैं और इसी से शादी की तैयारी में लगे हैं ?

शैर:–

क्या कभी तुमने सुना है मेरु को डिगते हुए ?
सूर्य पश्चिम में उगे नभ में पुहुप लगते हुए ?
क्या शशक के सींग देखे पाषाण पर नीरज उगे ?
हो प्रतिज्ञा भंग सबकी पर न वच से हम डिगें !!

पिता–पुत्रो ! मेरे जिगर के टुकड़ो !! हां हां प्रतिज्ञा ली थी परन्तु क्या यों कह दिया था कि सारी उम्र ही कुंवारे रहना और दुनियांदारी के झगड़े को छोड़ देना। केवल अष्टाह्निका पर्व की, या यों कहलो कि ८ दिन के वास्ते ही ब्रह्मचर्य व्रत का नियम लिया था। यावज्जन्म का तो नहीं और वह पूरा हो ही गया, अब शादी करवाने में क्या पाप है ? न कुछ धर्म का ही घात है ?

पुत्र–तो क्या पिता जी ! यह गुड्डी गुड्डाओं का खेल है और इसीसे आप मंगवारहे थे गुड़ घी तेल हैं ? आप ऐसा विचार न करें। हम अपने प्रण से न हटेंगे शादी के झगड़े में न पड़ेंगे।

शैर।

भीष्म जैसे "वचन रक्षक" पूर्व में होते हुए।
राम लक्ष्मण और सीता दुःख वन सहते हुए।
जब प्रतिज्ञा पूर्वजों ने ही कभी टाली नहीं ?

हम नहीं हैं वंश में क्या तुम वचन जो इम कही ॥
इन भुजाओं की क़सम खाके यह कहते हैं हम ।
लीक पत्थर की समझ लेना जो कि कहते हैं हम ॥

(वार्ता)

आप अपनी तैयारियां रहने दीजिये और शादी का विचार छोड़िये—क्या प्रण को प्राण सम नहीं बताया । "प्राण जांय पर वचन न जाई" क्या आपने यह उक्ति नहीं सुनी, दशरथ राजा ने प्राण से प्यारे राम को वन में क्यों भेजा ? क्या यह प्रण का निभाना ही न था ? यद्यपि आपके सामने बोलना अविनय में शामिल है तथापि धर्म-प्रतिज्ञा निभाने क़ाबिल है ।

पिता—प्यारे बच्चो ! तुमने प्रतिज्ञा जिस तरह ली थी उसको वैसे ही निभाओ !

माता—मेरे लाल ! ऐसा कह कर मुझे न रुलावो ।

पुत्र—पिता जी ! आपका कहना ठीक है परन्तु हमें तो यह

नहीं कहा गया था कि तुम को जो नियम दिया जाता है वह सिर्फ़ आठ ही दिन के लिये है ?

पिता-हमने भी तो तुम्हारे ही साथ व्रत लिया था। हमारी आठ दिन की प्रतिज्ञा पूरी होगई फिर तुम क्या हम से अलग हो ?

माता-हां, अपने पिताजी की बात पर ख्याल करो।

पुत्र-सब कुछ ठीक है। पर हम तो अपना विवाह न करायंगे और आजन्म अपनी प्रतिज्ञा निवाहेंगे हमें इस में कुछ शर्म नहीं है। झगड़े में पड़ने से कुछ लाभ नहीं। कीचड़ में पैर फंसाना ही मुबारिक नहीं।

गाना।

[चाल क़त्ल मत करना मुझे तेगोतबर से देखना]

कौन कहता है कि दुनियां में बड़ा आराम है ?
ख्याल कर देखा सरासर यह दुखों का धाम है ?
जग में सुख होता तो तीर्थंकर इसे क्यों छोड़ते?
चारों गति में देखलो सुख का कहीं नहीं नाम है॥

धर्म से ही सौख्य होता–जीव को है सर्वदा ।
हे पिता हम धर्म क्यों छोड़ें ? सुखों का धाम है ?
संसार असार है एक न एक दिन सब को दुनियां
से चलना है ।

दोहा–राजाराणा छत्र पति हाथिन के असवार ।
मरना सब को एक दिन अपनी २ बार ॥
साथ न स्त्री जायगी न लक्ष्मी ही,
पास फटक कर आयेगी ।
आप अकेला अवतरे मरे अकेला होय ।
यों कबहूं या जीव को साथी सगा न कोय ॥

पिताजी ! हमारा इसी में कल्याण है जीव को धर्म ही
सुख कारी है और यही साथ में जाने के लिये
सहकारी है ।

धर्म करत संसार सुख धर्म करत निर्वान ।
धर्म पंथ साधे विना नर तिर्यंच समान ॥
और भी धर्म की महिमा को सुनिये:–
धर्मः सर्व सुखा करो हित करो धर्म बुधा श्चिन्वते ।

धर्मेणैव समाप्यते शिव सुखं धर्माय तस्मै नमः ॥
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया ।
धर्मे चित्त महंदधे प्रति दिनं हे धर्म मां पालय ॥

आहार निद्राभय मैथुनं च,
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

वार्ता–पिता जी ! आपतो जानते हैं अधिक क्या ? इसकी महिमा करते २ तो गणधर भी थक गये हैं और चुप हो रहे हैं ।

पिता–पुत्रो ! यदि तुम्हारी मंशा यों ही है तो ऐसा ही करो धर्म पथ में पग धरो !! छोड़ो जग जंजाल और भजो ज्ञानकी माल ! चलो तुम्हें पाठशाला में पठाऊं ताकि गुरु तुम्हें जिन धर्म का मर्म बताऊं ।

तीनों का पाठशाला में जाना
(बैठक के सामने पाठशाला है)

पुरुषोत्तम–गुरु महाराज के चरणों में नमस्कार !

गुरु–चिरंजीवी हो ! आहा ! आज कैसे आना हुवा ?

पुरुषोत्तम (बच्चों की ओर इशारा करके) महाराज ! इन आपके शिष्यों ने सांसारिक–व्यवहार छोड़ आत्म कल्याण की ठानी है। अतः आप इन्हें पूरा २ धर्म न्याय अलंकार छंद ज्योतिष वैद्यक गणितादि का ज्ञान करादें। सत्पथ पर लगादें–

गुरु–पुरुषोत्तम ! बड़ा अच्छा विचारा ! हम इनको और भी अधिक ध्यान से पढ़ावेंगे न्याय का पाठ सिखावेंगे।

पुत्र–गुरु महाराज ! के चरण–कमलों में वारम्बार २ सविनय प्रणाम है !

गुरु–बैठ जाओ ! चिरंजीवी हो ! नय प्रमाण का स्वरूप याद करो–
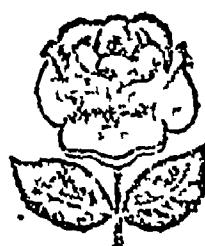
("सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं" ऐसा कह कर दोनों याद करते हैं)

अङ्क १—दृश्य ५।

कुछ बौद्धों की बात चीत।

एक बौद्ध–दुनिया में अगर कोई सच्चा धर्म है तो वह बुद्ध धर्म है!

दूसरा–यह तो दुनियां के धर्मों का मर्म है॥

तीसरा–और तो क्या राजा महाराजा चौधरी और लाला गुरु शिष्य और गायोंको पालने वाला ग्वाला तक सब इसी धर्म की परछाईं में है।

चौथा–बात तो यह है कि जो धर्म सच्चा और ज़ोरदार है उस की अनुयायी प्रजा है और सरकार है!

पहिला–बोलो बुद्ध धर्म की जय।

दूसरा–"बौद्धो मे शरणम्"

तीसरा–अरे यार! जैनियों की तो क्या ताब जो हम से करें कुछ वाद!!

चौथा-भला कहीं शेर का सामना करते हुए मृग को देखा है ?

पांचवा-अरे! आप लोग यहां क्यों खड़े हो ? चलोसभा में चलो ! समय करीव है वहीं पर कुछ ज्ञान की वात सीखेंगे ।

सव-चलो चलो ।

सव का जाना

(एक तरफ से घूमते हुए अकलंक और निष्कलंक का आना और वात चीत करना)

अकलंक-भ्रातः निष्कलंक ! जानते हो कैसा ज़माना है?

निष्कलंक-भ्राता जी ! जमाने का हाल तो पीछे होगा पहिले आप यह वताइये कि आप किस चिंता में मग्न हैं और वस्त्रों से भी नग्न हैं ?

अकलंक-भाई चिंता क्या ? वस कुछ भी नहीं, दिल में चैन का नाम भी नहीं ।

निष्कलंक-ऐसा कुछ है भी ? आप इतना क्यों घवराते हैं ? वात वताइये जिससे चिंता दूर करने का यत्न

किया जाय और चिंता पिशाचिनी को भगाया जाय ? चिंता बहुत बुरी होती है। क्या आप नहीं जानते और इस बात को नहीं मानते ?

सो०-चिता चिंता समान, बिंदु मात्र अंतर लखो।
चिता दहति निःप्राण, चिंता दहति सजीव को ॥

अकलंक-हे भ्रात ! जानता हूं मानता भी हूं परन्तु आज तो निज धर्म की दशा देख कर ही चिंतातुर हूं और कोई वजह नहीं है बौद्धों का जोर है उन्हीं का शोर है, दम की दम में आकर बरसते हैं मानो बादल ही घनघोर कर बरसते हैं ?

निष्कलंक-तो क्या चिंता से ही काम पूरा होसकता है ? क्या मृग की इच्छा से ही सिंह मर सक्ता है ?

अकलंक-नहीं, भाई यह कब मुमकिन है यह काम तो बहुत मुश्किल है। इसका एक उपाय मैंने सोचा है।

निष्कलंक-कहिये कौनसा उपाय सोचा है जिससे धर्म होता ऊंचा है।

अकलंक–भाई हम जैन धर्म के तो अच्छे जानकार हैं परन्तु
दूसरे धर्म को जाने विना सब बेकार है। अतः
हम दोनों किसी बौद्धशाला में चलें और बौद्ध
धर्म को जान कर जैन धर्म की उन्नति करें।

निष्कलंक–आपका कहना बिलकुल सत्य है परन्तु वह
कब सभव है कि बुद्ध लोग हमें इस तरह पढ़ने की आज्ञा
दे सकें वहां तो उलटी जान खतरे में है क्योंकि वे बेधर्मी
और बुरे उनके नखरे हैं।

अकलंक–भाई! निष्कलंक! यह तो बहुत दूर की सोची
या यों कहना चाहिये कि अपनी जान दुबारा ही
भगवान् से जाची अच्छा! इसका एक उपाय है
"हम लोग अपना अंगरक्षक और पगढ़ी उतार चढ़ा
तिलक चढ़ा धोती दुपट्टा पहिन बौद्धावलम्बियों का
वेश धारण करलें और फिर पढने चलें॥

निष्कलंक–बस काम हो गया और धर्म रक्षण का भी
पूरा २ मसाला तैयार होगया!!

अकलंक–अच्छा तो देरी न करनी चाहिये - शुभ कार्य

जितनी शीघ्रता से होसके करना चाहिए !!

निष्कलंक-भगवन् ! हमारी मंशा पूरी हो !

(दोनों का प्रस्थान)

गया के रास्ते में गाते हुए जाते हैं।

करें हम जैन धर्म परचार ॥ टेक ॥
जीवों के है सुख का कारण, जैन धरम इकसार।
समय पाय के विघट गया है करदें हम उद्धार ।१॥
बौद्ध धर्मका झंडा फैला, चहुं दिशी नगर मझार।
जीव विचारे भोले भाले करते हैं अपकार ॥ २ ॥
पढ कर हम बुद्ध धर्म "गया" में बोधें जीव अपार।
लगें वे सारे जैन धरम में गावें जिन जयकार ।३॥
प्राण जांय अरु धन भी जावे जाओ देह असार।
देह वही है जिससे होगा "सिद्ध" धरम उपकार ४

अङ्क १-दृश्य ६।

नगरी "गया" का दिखाई देना।

निष्कलंक-हे भ्रांत ! यह कौनसा नगर दिखाई देता है

और मन को लुभाये लेता है ॥

अकलंक मेरे विचार से तो यह "गया" ही है क्योंकि जिधर सुनो "बौद्धो मे शरणम्" की आवाज गूंज रही है मानो "गया" नगर को गया अर्थात् नष्ट हुवा ही निजध्वनि से कह रही है ।

निष्कलंक–भाई ! देखो वह बटोही आरहा है जिसका सादा चलन है और साफ तन वदन है उसी से पूछ लीजिये और शंका निवृत्त कीजिये ।

अकलंक–भाई बटोही ! क्या इस नगरी का नाम गया है ?

बटोही–जी हां नगरी तो गया है पर आपका यहां क्या काम निकल आया है ?

अकलंक–भाई ! हम बौद्ध हैं हमने सुना है कि यहां बौद्धों की बड़ी भारी पाठशाला है जहां विद्या का तैयार मसाला है हम वहीं विद्या अध्ययन के लिये जाना चाहते हैं समय को सदुपयोग में लाना चाहते हैं ।

बटोही–बहुत अच्छा भाई । पाठशाला तो यहां से बहुत

पास है और रास्ता भी साफ है वह जो वौद्ध खड़ा हुवा है उसके दांये हाथ की तरफ को जाकर सामने पाठशाला नज़र आने लगती है और "वौद्धो मे शरणम् की आवाज़ भी कानोंमें पड़ने लगती है ॥

अकलंक–भाई ! आपने हमारे पर वड़ी कृपा की । अच्छा "वुद्ध देव की जय ।

वटोही–"वुद्ध देव की जय"

(वटोही का जाना)

अकलंक–भ्रात ! चलो चलें और देर करने में क्या लाभ है ?

निष्कलंक–चलो भाई जी ! अव क्या देर है ? न कुछ फेर है ?

वह रही पाठशाला दुनीयां की ज्ञान शाला ।

पाठशाला में जाते हैं और दोनों भाई गुरु को प्रमाण करते हैं

दोनों–गुरु महाराज के चरणारविंदों में वुद्ध के भक्तों का वारम्वार प्रणाम है ?

वौद्धगुरु–"वुद्ध तुम्हारे रक्षक हों" ।

अच्छा तुम्हारा आना कहां से हुवा? क्या तुम्हारा नाम और गांव है किस धर्म के पोषक हो?

दोनों- गान।

नगरखेट हमारा जानो हम वहां पैदा हुए।
किसमत के मारे दोनों ही हम बेवफा पैदा हुए॥
बुद्ध गुरु है धर्म इनका पालते दोनों सदा।
बौद्ध विद्या सीखने को आये सुन कर सौख्यदा॥
पीढ़ियों से यह धरम ही मानते आये हैं सब।
आपके हम पास आये कीजिये कल्याण अब॥

गुरु-लड़के क्या है मोहनी मूरत है-अच्छा तुम्हारा नाम क्या है?

एक-गुरु जी! मेरा नाम अकलंक है।

दूसरा-महाराज! मुझे निष्कलंक कह कर पुकारते हैं।

गुरु-अच्छा! बैठ जाओ! और बुद्ध देव का नाम लेकर पढ़ना शुरु करो!

दोनो-अच्छा महाराज!

(दोनों का पढना)

श्री बुद्ध देव तुमने जगका भरम मिटाया।
देकर के ज्ञान सारा मिथ्यात्व को हटाया॥
जो भी शरण में आया, रस्ते उसे लगाया।
बुध ही धरम है सच्चा सबको सबक सिखाया॥

बौद्ध गुरु—अब हम जैनमतावलम्बियों की सप्तभंगी का स्वरूप समझाते हैं इसे सुनो और पीछे याद करना। पहले सातों भगों के नाम सुनलो—अस्ति, नास्ति, अस्तिनास्ति, अवक्तव्य, अस्ति अवक्तव्य नास्ति अवक्तव्य और अस्ति नास्ति अवक्तव्य। ऐसे ही नित्य, अनित्य, नित्यानित्य, अवक्तव्य, नित्य अवक्तव्य, अनित्य अवक्तव्य और नित्यानित्य अवक्तव्य। इसी प्रकार एक, अनेक एकानेक इत्यादि सात भंग हैं इन ही सात भंगों द्वारा प्रत्येक द्रव्य या पदार्थ का स्वरूप निरूपण करना सप्तभंगी न्याय कहलाता है।

अब एक जीव द्रव्य के साथ इन सातों भंग के

उदाहरण भी समझ लो। यथाः—जीव द्रव्य स्वचतुष्टय अर्थात् स्वद्रव्य स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा अस्ति रूप है और पर चतुष्टय की अपेक्षा उसी समय नास्तिरूप भी है। और—

(समझाते २ एक जगह पुस्तक में अशुद्ध पाठ होने से गुरुजी अटकते हैं और विचार करते हैं परन्तु समझ में नहीं आता।)

गुरुजी—अच्छा विद्यार्थियो! मैं अभी आता हूं और तुम पाठ याद करो आगे फिर कभी समझाऊंगा!

(गुरुजी का जाना)

अकलंक—(मन में) ऐसी क्या बात है जो गुरुजी अटक गये और जाल से में उलझ गये? देखें क्या बात है?

(पुस्तक का पाठ इस तरह ठीक करते हैं कि अपने सहपाठियों को भी मालूम न पड़े)

खटपट का सुनाई देना।

गुरुजी—याद करो न! किधर ध्यान है? किधर कान है?

क्या दिन में आती याद राजे राम की दुकान है ?

(गुरुजी का पुस्तक पढाना और अर्थ का ठीक लगना व बिचारना कि पाठ किसी ने शुद्ध किया है)

गुरु—अच्छा अब मालूम हुवा कि यहां भी ठगाई और भलाई के बदले बुराई ! ठीक ! कोई धूर्त जैनी यहां वेष बदल कर पढ़ता है तो ! अभी परीक्षा कर राजा से कह कर उसकी करनी का मज़ा दिखाता हूं और मौत की सजा दिलवाता हूं (सन्नाटा छा जाना) .

गुरुजी—बुद्धसिंह—क्या तुम जैनी हो ?

बुधसिंह—महाराज ! बुद्ध देव की क़सम जो मैं जैनी हूं ।

गुरु— बुद्धेन्द्र ! क्या तुम ही जाल रच रहे हो !

बुद्धेन्द्र—गुरुजी ! मैंने तो जन्म से आज ही आप के मुख से "जैनी" ऐसा नाम सुना है ।

गुरु—अच्छा मोहन ! तुम "बुद्ध" की क़सम खाओ ।

मोहन—"बुद्धदेव की क़सम" जो मैं ऐसा काम करूं और जैन का नाम भी उच्चारण करूं ।

गुरू-(मन में) इस तरह से तो पता नहीं लगाता क्या करना चाहिये ? हां हां !! क्या अच्छा उपाय सूझा है मानों काम बना ही का बना है। अब एक प्रतिमा जिन भगवान् की मंगवाता हूं और क्रम २ से सबों से उलंघवाता हूं जो जैनी होगा वही इसे उलंघन न करेगा ? क्या कोई ऐसा भी है जो अपने धर्म की अवहेलना करे।

(गुरु महाराज प्रतिमा मंगाते हैं)

गुरु-विद्यार्थियो ! क्रम २ से इस प्रतिमा को उलंघन करो और धर्म का परिपालन करो।

बुधसिंह-(खुश होकर)

गाना।

अहा अवसर कैसा आया, गुरुदेव हुकम फरमाया
मैं आगे सबसे रहूंगा, बुध सिंह मैं नाम धराया ॥

(प्रतिमा को उलघना)

कुन्देन्द्र-हमी कौनसे कम है ? क्या हमारे में नहीं इतना दम है ?

(प्रतिमा उलंघ जाना)

मोहन—लो हम भी अपनी बहादुरी दिखाते हैं, धर्मवीर नाम पाते हैं।

(उलंघ जाना)

अकलंक—(मन में) बड़ा ही कठिन मामला है—इधर खत्ती उधर कुआ है। एक तरफ़ धर्म अवज्ञा दूसरी ओर गुरु महाराज की लठिया !!

[अपने वस्त्र से एक धागा निकाल प्रतिमा पर डाल उलंघ जाता है]

निष्कलंक अपने भाई का संकेत समझ कर।

परे हटो ! हमको उलंघने दो।

(उलंघ जाते हैं)

गुरुजी—अरे ! यह क्या बला ? मेरी कुछ भी चली न कला। अब इससे बढ़कर और कौनसा उपाय है जिससे भेद मालूम हो और मंशा पूर्न हो। अच्छा विचार करेंगे।

अङ्क १—दृश्य ७

(सब विद्यार्थी निद्रादेवी की गोदी में हैं सन्नाटा छाया हुआ है।

गरु—(नौकर से) अवे ! खचेड़ !! हमने क्या कहा था!

खचेड़—जी हां ! एक टूल सी आगई थी !

गुरु—अवे ! टूल को रहने दे यह बात जो हमने कही थी क्या वह भी भूल गई ?

खचेड़—वह ! अजी नहीं अभी लो ! सब काम किये देता हूं आप होश्यार रहें। और इस बात को आजमाने में मुस्तैद रहें।

गुरु— मैं तो सब तरह होश्यार हूं जल्दी काम कर। इसी से बेक़रार हूं।

(खचेड़ कांसी के कुछ भारी २ बर्तन किसी गठरी में बांध कर एक दम शयनागार में ऊंचे से गिराता है)

(बर्तनों का बजना)

सब विद्यार्थी—चौंक करमुंह ढक लेते हैं। अरे क्या बवाल? मारा भूत का जाल !! क्या होना है ? क्या रोना है ?

कुछ विद्यार्थी—"बौद्धो मे शरणम्"

बुद्धभक्त गाना (गजल)

विनती ये कर रहे हैं चाहे तारो या न तारो।
तेरा ही आसरा है चाहे तारो या न तारो॥
हे बुद्ध देव किन अब ! लीला रची है बेढ़ब।
इससे हमें बचावो दुख से हमें उबारो॥
क्या सिंह है गरजता क्या मेघ है बरसता।
घबरा रहे हैं हमतो इससे हमें निकारो॥
क्या शब्द घन घनाता ? मानों हमें ही खाता !
तारण तरण तुम्हीं हो दुखिया हमें निहारो॥
हमने तो अब तक भी ऐसी न लीला देखी।
अपने प्रसाद से ही दुखदंद सब निवारो॥

अकलंक और निष्कलंक– णमो अरहंताणं,णमो, सिद्धाणं णमो।

गुरु–अरे ! खचेड़ू !! घेर २ ! मुंह फेर २ !! पकड़ो २ ! जकड़ो २ !!

खचेड़ू–गुरु बुद्धसिंह और बुद्धेन्द्र को न ?

गुरुजी–अरे ! नालायक ! जो अरहंताणं सिद्धाणं कह

रहे हैं उनको। ये दो भाई जो उस दिन बौद्ध बनकर आये थे इन को पकड़ो। करे का मज़ा चखाओ और हथकड़ियां पहरावो ॥

[इतने में शोर सुन सिपाही आते हैं और दोनों भाइयों को गिरफ्तार कर हथकड़ियां पहनाते हैं]

(ब्लॉक और सिपाहियों द्वारा दोनों भाइयों का पकड़ा जाना)

गुरुजी—मज़बूत भी पकड़ लिया। अच्छी तरह जकड़ भी लिया ?

सिपाही—महाराज ! अब छूट जावें तो हम जुम्मेदार हैं और सरकार के गुनहगार हैं ॥

गुरुजी—अच्छा ! ले जाओ राजा के पास और करदो इन का सत्यानाश ॥

अङ्क [१—दृश्य ८ राज दरबार]

(राजा सिंहासन पर विराजमान हैं ! परियों का मुबारिक बादी का गाना)

गंजाधन आज राजा को मुबारिक हो मुबारिक हो।
दया गुण और राजा का ... ... ॥ टेक ॥

जो कोई जुल्म करते हैं, उन्हें ये दण्ड देते हैं।

खुशी में मिलना तोफेका ... ...

बौद्ध के धर्म से उल्टे, जो कोई गर ये पाते हैं।

हुकम शूली का उन सबको मुबारिक ... ...

नीति पर चलने वाले हैं, धरम पर मरने वाले हैं।

कुटुम्ब संपत्तियों का होना ... ...

कोतवाल–महराज की जय हो।

मंत्री–क्या महराज के लिये कोई नई खबर है जिस से तुम्हें इनाम मिले और मनोवांच्छित सन्मान मिले।

कोतवाल–खबर तो महाराज को ऐसी सुनाऊंगा जिस से पूरा २ इनाम और सन्मान पाऊंगा?

मंत्री–कहो तो फिर क्या देर है?

कोतवाल–महाराज गुरुजी की पाठशाला में छिप कर पढ़ने वाले, धर्म नाम मिटाने वाले दो भाई जिन के नाम अलंक पलंक हैं पकड़कर लाये हैं।

मंत्री और सब दरबारी–वाकई इनाम का काम है? धर्म का नाम है

राजा–मंत्रियों। मुजरिम पेश किये जांय और कोतवाल को इनाम और (Night) "नाइट" का खिताब प्रदान किया जाय।

(मन्त्री इनाम देता है)

मंत्री–शेरसिंह। लाओ जल्दी मुजरिमों को। देर क्यों लगाई है? क्या कुछ रिश्वत की ठहराई है?

शेरसिंह–महाराज। मैं क्या इन से रिश्वत लेकर अपने इनाम को खोऊंगा और नमक हराम कहलाऊंगा। आपकी आज्ञा ही की देर थी लाकर पेश करता हूं।

(जाता है और लाकर पेश करता है)

शेरसिंह–लीजिये। हुजूर। सेवा में हाज़िर हैं॥

राजा–(मुजरिमों को देख कर) अरे। तुम ही हो धर्म चोर छिप कर दिखाते ज़ोर॥

मंत्री–देखने में तो भोले भाले हैं परन्तु दिल के काले हैं॥

राजा–अच्छा। दण्डनीति शास्त्र की धारा २८२ क्या

आज्ञा देती है ?

मंत्री   गाना (सोहनी)

क्या कहूं मैं आप से मुख पै मिरे आता नहीं ।
देख करके इनकी सूरत कुछ कहा जाता नहीं ॥
शर्तें राजन् दो लिखी हैं क्याकहूं अरु क्या नहीं ।
"धर्म को स्वीकार करना" या तजो निजप्राण ही॥
प्राण तो, ये क्या तजेंगे आप इन से पूछ लें ।
धर्म को स्वीकार करलें तो इन्हें अब छोड़ दें ॥

राजा—ऐ मुजरिमों ! दो शर्तें हैं बुद्ध-धर्म स्वीकार करो या अपना शिर उतार कर धरो । कहो क्या मंजूर है ?

दोनों भाई—आपका धर्म हमें मंजूर नहीं जान जायगी तो हमें कुछ परवाह नहीं ॥

मंत्री—अय बच्चो ! अक्ल के कच्चो !! तुम्हें देखकर तरस आता है । बदन कंपकपी खाता है । मान जाओ और बौद्ध बन जाओ ॥

दोनों भाई–गाना–

स्वीकार हमको प्राण देना, पर धरम छोड़ें नहीं ।
हे राजराजन् ! बात क्या कहते हो हमको डर नहीं
क्या आज शूली से डरें हम और त्यागें धर्म को।
ये प्राण फिर किस काम आवें जो न राखें धर्म को ।
यों मारना सब को एक दिन है कौन है रहता सदा
निज धर्म पर जो प्राण देंगे क्या ही अवसर सौख्यदा
राजन् । समझते होंगे दिल में "मैं रहूंगा सर्वदा"।
मैं भ्रम तुम्हारा हूं समझता "काल" छोड़े ना कदा

(वार्ता)

हे राजन् । हम धर्म तो छोड़ देते मगर जो हम अमर हो जाते । मरना आज भी और फिर भी । तो धर्म ही छोड़कर अयश की पोट बांध कर क्यों मरें ।

राजा–चाहता हूं काट सर तुम्हारा ज़मीं पर डार दूं ।
क्या करूं मैं भोली सूरत से अभी लाचार हूं ।
हमारी शान शौकत की तुम यों तोहीन करते हो ?
मान लो बच्चो कहा क्यों धर्म तारीफ़ करते हो ॥

"छोटा मुंह बात बड़ी बात" संभल जावो अभी तो बहुत बात है। नहीं तो सवेरे ही जल्लादों से तेरा घात है।

बच्चे-(दोनों भाई) शैर

राजन्! अर्ज हम क्या करें कि बेशऊर हैं।
खुद कीजियेगा न्याय हम हाजिर हजूर हैं।
मुलज़िम नहीं दोष नहीं है बेकसूर हैं।
इतना क़सूर है कि हम जैनी जरूर हैं।
इससे बढ़ कर तो आप और कुछ नहीं कर सकते।
आप अपनी इच्छा पूरी करिये हम धर्म न छोड़ेंगे।

राजा-मंत्रियो! तुमही समझादो जो इन की समझ में आजावे। और काल के मुंह में न जावें॥

मंत्री-ऐ अपने मां बाप के प्यारो! मान जावो मान जाओ इतनी रियायत भी तुम्हारे साथ है। नहीं तो कभी का शूली का हुक्म सुना दिया जाता और नामोनिशां भी न पाता।

दोनों भ्राता-शेरः-

चाहे कहो इक मर्तबा चाहे कहो सौ बार भी।
धर्म हम छोड़ें नहीं व शूली देना आज ही॥

दरबारी-ये क्या कह रहे हैं, क्या इन के मां बाप नहीं हैं (मुजरिमों से) अरे काल के ग्रासो अब भी मान जाओ-हमें भी तुम्हें देख कर तरस आता है।

दोनों भ्राता-दरबारियो! तरस क्यों लाते हो तुम तो नौकर कहलाते हो! अपने कर्तव्य का पालन करो दिल को परेशान न करो॥

शेर।

इससे अच्छा और मौका होगा क्या संसार में?
धर्म पै बलिदान होंगे-नृप हंसे दरबार में॥

राजा-तो फिर क्या देर है? कोतवाल! पकड़ो और इन की मुश्कें जकड़ो देखो भाग न जांय कहीं तुम्हारे सिर पर आफ़त न पड़ जाय! कल इन को प्रातःकाल ही जल्लादों के सुपर्द करो-धर्म का कांटा

दूर करो ॥

कोतवाल–जो हुक्म महाराज !

(कोतवाल पकड़कर क़ैदखाने के ऊपरी भाग में ले जाते हैं और पहरा देते हैं)

अंक २—दृश्य १ क़ैदखाना।

पहरेदार नींद में झूल जाते हैं।

निष्कलंक—भाई यह बात तो कुछ न हुई इतने परिश्रम से विद्या पढ़ी और कुछ भी काम न आई।
आज अपन दोनों मारे जावेंगे और काल के ग्रास होंगे।

अकलंक—भ्रात! क्यों घबराते हो? मैंने यहां से निकलने का उपाय सोच लिया है।

निष्कलंक—भ्राता जी! मुझे मरने से डर नहीं परन्तु चिंता इस बात की है कि इस धर्म का कुछ भी प्रचार न कर सके दुनियां से बेकार चल बसे!!

अकलंक—मेरे मंत्र प्रभाव से सब सोगये हैं पहरेदार भी निद्रा-देवी की गोद में विश्राम कर रहे हैं। तुम छतरी तानों और चलो यहां से भाग चलें।

(छतरी के बल से कूद कर भागते हैं।

कृष्ण—अरे हनुमंत! सोता है! अपने कर्तव्य से मुंह

छिपाता है।

हनुमन (चौंक कर) कृष्ण है क्या ? क्या बारह बज गये ? और अपनी डयूटी (Duty) पर आगये ?

कृष्ण–बातें तो पीछे होंगी यह बताओ कि वे कैदी भी उसी तरह हैं ? क्या अपना धर्म छोड़ने में राजी है ?

हनुमंत–(इधर उधर देख कर) हैं ! हैं !! कैदी वे दो भोले भाले मगर दिल के काले यहा से तो कूच ही कर गये ?

कृष्ण-अरे ! अब भी खड़ा सोचता है अर मूछें मरोड़ता है !! बड़े कोतवाल से रिपोर्ट कर पकड़ा क्यों नहीं छुड़ाता !

हनुमंत– गाना।

लीजो २ खबरिया सबेरी रे ॥ टेक ॥

हे देव मैं ही आ फंसा हूं आज जाल में।

किसमत में मेरी क्या लिखा था ! आह ! भालमें ॥

लीजो० ॥ १ ॥

जैसा किया था आज मैंने पाऊंगा वैसा।

आज मैं जो छूट जाऊं छोड़ दूं सेवा ॥लीजो०॥२॥

कृष्ण-मेरे यार! इतना न घबराओ! जो तुमने जान बूझ कर न छोड़ा होगा तो तुम्हारा बाल भी बांका न होगा "अंधेर नगरी-चौपट्ट राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा" वाला हिसाब न होगा!

(दोनों का कोतवाल के पास जाना)

(कोतवाल शय्या पर निद्रादेवी की गोद में विश्राम कर रहे है)

हनुमंत-क्या हुजूर सोते हैं?

कोतवाल-(चौंक कर) हूं! हनुमंत!! आज रात्रि में-(घड़ी देख कर) ओह! ठीक १२ बजे कैसे आना हुवा?

हनुमंत-हुजूर! आना जाना क्या? बड़ी भारी गलती हुई, गलती क्या दिल में आग ही जलती हुई!

कोतवाल-ऐसी क्या बात है? क्या रिश्वत लेकर क़ैदियों को छोड़ दिया है?

हनुमंत-हुजूर ! अब तो मुझे जो कुछ कहा जायसो थोड़ा है जान कर चाहे भूल से छोड़ा है ।

कोतवाल-तो क्या छोड़ ही दिया ?

हनुमंत-महाराज ! क्या बताऊं ? मुझे जरा सी ऊंघ आगई और वे दोनों हजरत चलते बने ! मैं बुद्ध देव की कसम खाकर कहता हूं कि मैंने उन्हें नहीं छोड़ा किन्तु उनकी किस्मत ने ही उन से नाता जोड़ा !!

कोतवाल-अच्छा ! हुक्म दो कि चारों दिशाओं में तेज सवार दौड़ाये जावें और जहां वे दोनों मिलें धड़ से शिर को अलग कर देवें ! और हमें इसी वक्त आकर खबर मिले !

पहरेदार-अच्छा हुजूर !

(पहरेदारों का जाना और सवारों का दौड़ना)

पटाक्षेप ।

अंक-२ दृश्य २ जंगल।

(अकलंक और निष्कलंक पीछे देखते हुए भागने जाते हैं)

निष्कलंक-भ्राता! आज जीना दुश्वार है! मौत का खुला हुआ द्वार है!! देखो पीछे टप २ की आवाज़ सुनाई आती है! मन को डराती है!!

अकलंक-हां भाई! वात यही है, जान की क्या खैर है

निष्कलंक-अच्छा तो भाई! ऐसा करो कि तुम तो इस तालाव में छिप जावो और मैं मारा जाऊंगा तो कुछ परवाह नहीं है क्योंकि तुम मेरे से विशेष जानकार हो, तुम धर्मोन्नति करने में होश्यार हो!!

अकलंक-भाई! क्या कहूं? कुछ कहा नहीं जाता। हृदय फटा जाता है। तुम से अलग हुआ नहीं जाता अपने मां वाप के लाडले! उन्हें सताया और फिर भी दुःखों का अन्त न आया॥ कहा भी है।

एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं-
गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।

तावद्द्वितीयं समुपास्थितं मे-
च्छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति ॥

निष्कलंक-"दैवोऽपि दुर्बलघातकः" अर्थात् दैव भी दुर्बलों का ही घातक होता है इस बात को हमने आजमा लिया है भाई कुछ भी हो जल्दी करो देर का काम नहीं है।

अकलंक- गाना (सोहिनी)

भ्रात मेरे जान प्यारे! तुम मुझे छोड़ो कहां?
तुम बिना जीना मेरा मुश्किल बड़ा ही है यहां॥
लाल प्यारे! भ्रात मेरे!! तुम बिना कैसे रहूं?
क्या कहेगी सारी दुनिया, "भ्रात बिन जीता रहूं"
तुम रहो जिंदा हमेशा-धर्म की उन्नति करो।
मैं मरूंगा जान देकर, क्यों फिकर में तुम परो?
भाग जाओ शीघ्र ही टप २ सुनाई पड़ रही।
दिल धड़कता है मेरा रो २ के आंखें भर रही॥

निष्कलंक-भ्राता जी यह सर्वथा अनुचित है।

गाना-

क्या बात कहते हो मुझे अब शीघ्रता तुमही करो ।
तालाब में तुम पैठ करके प्राण की रक्षा करो ॥
ज्ञानी विज्ञानी तुम बड़े हो धर्म में मन को धरो ।
निज प्राण मैं ही आज दूंगा तुम फिकर अपनी करो

(वार्ता)

आः भाई ! यद्यपि तुम से अलग होते हुए जिगर के टुकड़े २ होते हैं परन्तु क्या करूं तुम बड़े हो, शीघ्र ही तालाब में छिप जाओ और धर्म-रक्षा करो ।

अकलंक-(आह भर कर) आः भाई देखो ! यह टप २ तो यही आगई तुम जाओ और मैं भी छिपता हूं जो जीवित रहे तो फिर मिलेंगे वरना फिर तो दूसरे भव में ही मिलना होगा !!

(अकलंक का तालाब में छिपना)

[अकलंक को तालाब में छिपते और निष्कलंक को बड़ी घबराहट से आगे को भागता देख कर

और कुछ घुड़ सवारों को घोड़े दौड़ाते हुए पीछे से आते जान कर एक धोबी का लड़का जो उस तालाब के किनारे वस्त्र धोरहा था अति भयभीत होकर निष्कलंक की तरह आगेको भागने लगा]

घुड़सवार—(दोनों को भागते देखकर) देखो ! वे दोनों आपस में इधर की तरफ़ कौन दौड़ रहे है मालूम पड़ता है कि वे ही दोनों भाई हमें देख कर डर से भाग रहे हैं । पकड़ो २ !! और एक दम बिना देखे क़त्ल कर डालो !!

सिपाही—अभी लीजिये सरकार ?

(भाग कर दोनों को क़त्ल कर डालते हैं)

अंक २—दृश्य ३ राज भवन ।

राजा—(मंत्री से) अभी तक वे दो बच्चे जीवित हैं या हमारे हुक्म से मारे गये ?

मंत्री—यहां तो और ही क़िस्सा हुआ जिससे मुझे भी गुस्सा हुआ ।

राजा—यह क्या बात ?

मंत्री—कोतवालों और पहरेदारों की गलती से दोनों भाई छूट भागे—(कोतवाल का आना)

कोतवाल—महाराज! छूट भागे थे परन्तु हम अभी इनको कत्ल करके आरहे है।

मंत्री—क्या क़त्ल होगये ?

कोतवाल व सिपाही—जी हां क़त्ल! मौत के द्वार! काल के गरसे!

मंत्री—चलो काम तो बन ही गया !

राजा—(मंत्रियों से) अच्छा इन्हे इनाम दिया जाय और सख्त ताकीद की जाय कि अब से ऐसी भूल की भूल न हो।

(मन्त्री का इनाम देना)

अङ्क २—दृश्य ४ जंगल।

(तलाब से बाहर निकल कर अपलक भाई के वियोग में अधीर हो रहे हैं)

गाना (सोहिनी)

(चाल: हर रोज की गर्दिश से गर्दिश मे ज़माना होगया)

हर रोज़ विधी हमको दिखाता नाच रंग नये २ ।
गर्दिश में हमको है रुलाना स्वांग करके नये २ ॥
घर छुटे फिर भी नहीं हम को पड़ी कुछ चैन है !
दुख दर्द में भी दिन बिताये गालियां सह कर रहे।
भाई छुटा दिल का प्यारा मौत भी आती नहीं ।
क़िस्मत मेरी फूटी अधम की दिवस रो २ कर गये
अब हे प्रभो अर्ज़ी हमारी ख्याल कर सुन लीजिये।
हम धर्म पर निज प्राण तजदें लें न अपयश हम मुये
जिन "सिद्ध" की सुध लीजिये ऐसा न दुख आवे कभी
"जो राम दशरथ और श्री अकलंक सह २ कर गये"

एक द्रोही--अहो वीर ! तुम क्यों हो रहे हो अधीर ?
तुम तो बड़े ज्ञानवान मालूम होते हो फिर इतना
क्यों घबराते हो ?

अकलंक-भाई जिस समय आत्मा पर मोह राजा का
पर्दा पड़ता है ज्ञान तब एक ओर किनारा कर
जाता है। रावण जब सीता को हर कर लेगये तो
रामचंद्र जी वृक्षों से अपनी प्राणप्यारी सीता को

पूछते फिरे । रामचन्द्र का इतना ज्ञानी होना और वृक्षों से जवाब की आशा करना–सिर्फ मोह राजा की कृपा ही का फल था ... ...

बटोही–विपत्ति किसे नहीं आती ? सख्त करो अपनी छाती । तुम्हारा भाई धर्म पर मरा है । नहीं २ वह जिंदा ही तुम्हारे क्या–सब दुनियां के सामने–खड़ा है ।

शैरः–जिन्दगी तजते हैं किंतु वीरता तजते नहीं ।
धर्म पर मरते है जो जीवित हैं वह मरते नहीं ॥
कितने ही दुर्बल क्यों न हों बलवानों से डरते नहीं ।
"धर्म" प्यारा है जिन्हें वह मौत से डरते नहीं ॥

अकलंक–यह सब कुछ ठीक है किंतु ... ...

गाना–

वीर अब कैसे बांधू धीर ॥ टेक ॥
दुख सुख में जो साथी मेरे–रहे न वे भी तीर ।१॥
नही किसी का दोष कहूं मैं, उलटी मम तक़दीर ।
भ्रात का मिलना है अब मुश्किल–लाख करो तदबीर
ना दिल में सन्तोष रहा कुछ ना नैनों में नीर ।४

"सिद्ध" पुकारें इस गर्दिश ने कर डाले हैं अधीर॥

बटोही—भाई ज्यादा शोक न करो—परमात्मा को याद करो। तुम्हारा भाई हमेशा के लिये अमर होगया है दुनियां में धर्म का बीज बोगया है।

अकलंक—आपका कहना सत्य है! "प्राण जांय पर धर्म न जाय" वह धर्म पर बलि हुआ है—भगवान् मुझे भी धर्म पर आजमावे।

(अकलंक का प्रस्थान)

अङ्क २—दृश्य ५ जिनमंदिर।

रत्न सञ्चयपुर में।

मदन सुंदरी हिमशीतल की रानी फाल्गुन की अष्टाह्निका के पर्व में—भगवान्—भक्ति में लवलीन है)

गाना—

आज प्रभु! आई तुव दरबार॥ टेक॥
अंजन से अपराधी तारे—तारे अधम गंवार।
मेरी ओर निहारो स्वामी—कृपा सिंधु अवतार॥

जल चन्दन लेकर मैं आई—शालि पुष्प चरु सार।
दीप धूप फल अरघ चढ़ाऊं—पाऊं शिव सुख सार॥
भव २ भटकी कर्मन मारी—आई शरण अवार।
"सिद्ध" करो मम आशासारी—तुम लग दौर हमार॥
हे भगवन्! तुम तरण तारण हो! भवनिवारख हो! कृपासिंधु! जीव हितकारी, सर्वज्ञ तदपि वीत-रागी हो! तुम्हारी महिमा अपरम्पार है गणधर भी बखान नहीं कर सक्ते। तो मेरी क्या बात है? सूर्य के सामने पटबीजने की क्या ताब है? हे भगवन्! मेरी आशा पूरो और अज्ञान अंधकार को दूर करो!! आप के चरणों मे मेरी साष्टांग नमस्कार है!

(रानी का मंदिर से प्रस्थान)

अङ्क २ दृश्य ६ राजमहल।

राजा—प्रिय! क्या किसी चिंता में निमग्न हो?
रानी-प्राणनाथ अब श्रीजिन देवकी रथोत्सव यात्रा

कराने का विचार है और कुछ चिंता नहीं।

राजा-प्रिये! रथयात्रा?

रानी-राजन्! तो क्या आपने झूट समझा?

राजा-झूट तो नहीं किन्तु मुझे संघ श्री बौद्ध गुरु ने यह हुक्म दिया है कि जब तक मुझे कोई विद्वान् वाद में न हरादे तब तक रथोत्सव न हो सकेगा।

रानी-यह तो बड़ी कठिन बात है बौद्धों के राज्य में ऐसे विद्वान् का मिलना-गीदड़ दल में शेर का खेलना? भगवान् कैसी कठिन समस्या आकर पड़ी? न जाने मैंने पहिले कैसी करनी करी?

राजा-प्रिये मैं क्या बताऊं? गुरु के वचन से लाचार हूं इसी से मैं भी बेक़रार हूं॥

शेरः-जानती हो बौद्ध मैं हूं पर मुझे इन्कार क्या?
जिन रथोत्सव से मुझे है लाभ क्या नुक़सान क्या?
तेरे वचन को मैं प्रिये क्या टालसकता था कभी?
लाचार हूं मैं गुरु वचन से रोकता मैं क्या कभी?

रानी-शेरः-आपका क्या दोष है? राजन् मेरे उलटे करम।

कुछ नहीं पहिले किया मैं दान पूजन शुभ धरम॥
कर्म ही ये दुःख देते अरु नचाते हैं सदा।
आगे इनके बस किसी की भी चली है क्या कदा?

(वार्ता)

हे प्राणनाथ! यह मेरे ही कर्मों का फल है जो देव पूजा में भी खलल है। आप न घबराइये और गुरु वचन को मानिये!!

(दोनों का प्रस्थान)

विदूषकः-(पबलिक से) राजा ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो पक्के जैनी ही होगये हों। बौद्धों का पक्ष हृदय में रखते ही नहीं!! धन्य है। ऐसी झूठी भलाई तो मैं भी लेलूं।

बात तो यह है सब के गाने की।

गाना (मेरे मौला बुलालो मदीने)

जो अपत्ति पड़ेगी उठायेंगे हम।
अपनी जाति को दुख से बचायेंगे हम॥ टेक॥
प्रण किया जो मुंह से हमने, हम न हट सकते कभी।

कालिमा अपयश न माथे पर लगा सकते कभी ॥
दिल में जो है वह करके दिखायेंगे हम ॥
भय नहीं इस का ज़रा भी, जान जाए या रहे ।
धर्म की रक्षा करेंगे, शान जाए या रहे ॥
धर्म-सेवा में निज को मिटायेंगे हम ॥
कुरीतियां बढ़ने लगी है इस तरह व्यवहार में ।
चींटियां शक्कर पै जैसे आलगें एक बार में ॥
ऐसी चालों को जड़ से हटायेंगे हम ॥
धर्म की जो माल जपते, वे विधर्मी बन गये ।
पाप जिनको था बुरा व भी अधर्मी बन गये ॥
अब तो राजा को जैनी बनायेंगे हम ॥

अंक २—दृश्य ७ जिन मंदिर ।

(मदन सुंदरी का भगवत् भक्ति में लीन होते हुए दिखाई देना और गाना:—)

हे प्रभो ! आनंद दाता ज्ञान हमको दीजिये ।
दूर करके सब बुराई को भलाई दीजिये ॥

क्या लिखी कर्मों में मेरे भाग्य बिलकुल फूट गये।
अब करो किरपा अनुग्रह शांति वैभव दीजिये ॥
रथ नहीं जब तक चलेगा सुख नहीं होवे मुझे !
रथ चलाकर धर्म के अब मान को रख लीजिये ॥
और तो ज्यादा कहूं क्या अन्न जल मैं सब तजूं।
जब तक नहीं रथयात्रा होअर्ज मेरी सुन लीजिये ॥

हे भगवन् ! कृपा सिंधु !! मैं आज आप की साक्षी लेकर कहती हूं कि तब तक अन्न जल का त्याग है जब तक कि मेरी रथयात्रा सानंद परिपूर्ण न हो।

मत्र काजपना।

(एक दम आवाज़ का होना चक्रेश्वरी देवी का आना)

देवी—ऐ ! जिन भक्त मदन सुंदरी ! गुनगणभरी !! धन्य है तुझे और तेरी प्रतिज्ञा को !! ले मैं तेरी भक्ति और प्रतिज्ञा से खुश होकर तेरी सहायतार्थ आई हूं— हे सुंदरी ! कल प्रातःकाल ही अनेक शिष्यों कर सहित श्री अकलंक देव वन में आवेंगे और वेही तेरे उपसर्ग को दूर कर रथोत्सव करावेंगे और

जैन धर्म पताका फहरावेंगे।

मदन सुंदरी—हे देवी! तुझे धन्य है जो मेरी जान बचाई और मेरे साथ करी भलाई॥

शेर—सर पै रक्खा हाथ तुमने अरु रखा संताप से।
बोल भी सक्ती नहीं मैं आप के उपकार से॥

देवी—मैं जिन भगवान् की सेविका हूं। उनके ही हुक्म में रहती हूं। उनके भक्तों को सुख देती हूं।

मदन सुंदरी—आज मेरा काम हुवा और मेरा भाग्य उदय हुवा हे देवी! तुमने इस कठिन समय पर महान उपकार किया?

देवी—सुंदरी! मैंने तुम्हारे साथ क्या उपकार किया है? सिर्फ़ अपने कर्तव्य का पालन किया है।

मदन सुंदरी—अच्छा देवी! मेरे पूजन का वक्त होता है—दिन उगना चाहता है मैं तो अपने सामायिक में लगती हूं।

देवी—अच्छा सुंदरी! मुझे भी आज्ञा दो।

[मदन सुंदरी का सामायिक करना] (देवी का जाना)
सामायिक से निवृत्त होकर।

[गाना- चाल:-

धन २ महावीर जिनराज-दुःखों के मिटाने वाले।
दुःखों के मिटाने वाले-मुक्ति की राह बताने वाले॥
कुंडलपुर ले में अवतार, किया ब्रह्मचर्य व्रत धार।
तुम यश गावें देव अपार, सबका भरम मिटाने वाले।
देकर के उपदेश महान, दूर किया सब ही अज्ञान।
पालिया कितनों ने शिवथान, सबके कर्म भगाने वाले
मुझे पड़ी थी विपदा आय, दीनी तुमने उसको भगाय।
देवी चली स्वर्ग से आय, दयासिंधु कहलाने वाले॥
पूजा करके श्रीजिनराज, जाती हूं मैं अपने काज
"सिद्ध" करो मंशा मम आज-तुम ही हो धीर बंधानेवाले॥

हे भगवन्! अब मैं भी श्री अकलंक देव का पता लेने के लिये-धर्म की लाज बचाने के लिये वनों में सभ्य पुरुषों को भेजती हूं और मन में आप का नाम भजती हूं।

(रानी का प्रस्थान)

अंक २—दृश्य ८ जंगल ।

(अकलंक अपने शिष्यों समेत बैठे हुए हैं)

धर्म शास्त्रों का पठन-पाठन होरहा है ।

एक शिष्य—महाराज ! क्या यहां भी आफत है आज ?

दूसरा—आनन्द ! तुमतो यों ही कह देते हो और घबड़ाते हो ।

अकलंक—क्यों आनन्द ! क्या बात है क्या यहां भी किसी की बात है ?

आनन्द—जी हां ! देखिये शहर की तरफ से कुछ आदमी आते हैं और हमको भ्रम उपजाते हैं ।

श्रीचन्द्र—महाराज ! आते रहे हैं और इधर को ही आरहे हैं ।

पूर्णभद्र—गुरु जी ! मेरे तो होश उड़ रहे हैं ।

[illegible])

गुरु—जो होना है सो किसी से नहीं टलता सूर्य उदय हुये

विन कमल नहीं खिलता। आने दो। देखेंगे ये कौन हैं कुछ कहते हैं या मौन हैं ।।

(आदमियों का आना)

सुमति प्रकाश—रानी जी ने जो अकलंक देव का पता बताया था सो ये ही मालूम होते हैं क्योंकि पैर आगे नहीं बढ़ते हैं।

बुद्धिसागर—शिष्य मंडली क्या ज्ञान की कुंडली ही है मुझे भी इन शिष्यों से उन्हीं का निश्चय होता है ।।

विद्या सागर—यह तो हम भी कहते हैं कि ये कोई महात्मा हैं महात्मा क्या सचमुच परमात्मा ही हैं।

बुद्धि प्रकाश—बातों ही बातों में कितनी देर होगयी—मेरे यार! इन्हें पूछने में क्या हमारी इज्जत घटती है और ज़बान फटती है?

सुमतिप्रकाश—हां, भाई! है तो हम भी "सुमतिप्रकाश" पर तुमने तो अपना "बुद्धिप्रकाश" नाम सार्थक ही कर दिखाया।

सच का पूछना ।

महाराज ! आप हमें अपना पता वता बताइये–आप कौन हैं ? कहां से आये हैं ! क्या आपका नाम है। यहां पर कैसे आना हुआ ?

अकलंक–(आश्चर्य में) क्या कुछ काम अच्छा है ? या यों ही धैलम धक्का है ?

बुद्धिप्रकाश–महाराज ! काम ! पहिले बताइये अपना नाम !!

विद्यासागर–गुरुजी ! काम अच्छा है जब हम आये हैं, न कि व्यर्थ ही घूमने–धक्के खाने–आये हैं।

अकलंक–भाई मेरा अकलंक नाम है ! अब बतावो तुम्हें क्या काम है ?

बुद्धिसागर– गाना–

अहा खुशी मना, मिला दिल का चहा ।
अब तो हमें परवाह नहीं ॥ टेक ॥

रानी जो यह लेंगी जान–नौकर लाये कर पहचान।
देंगी वे मन वांछित दान–अब तो हमें कुछ चाह नहीं ।१

नौकर करते अच्छा काम, नहीं है बिल्कुल नमक हराम!"
रानी जब लेंगी यह जान—तब तो हमें कुछ चाह नहीं॥२॥

अकलंक—अपनी २ गा रहे हैं! दिल के अरमान निकाल रहे हैं!!

बुद्धिप्रकाश—अजी गुरु जी महाराज! आप को रानी जी ने याद किया है, यही हुक्म हमें फरमाया है!!

अकलंक—रानी जी बौद्धमत को मानने वाली होंगी इसी से मेरी याद फरमाती होंगी।

विद्यासागर—गुरु जी क्या कहते हैं, क्या सचमुच ही ये रानी जी को नहीं जानते?

सुमति०—ज्ञानभण्डार! वे तो पक्की, जैन मत में, सच्ची लगी हुई है। इसी से आप के सत्कार में लगी हुई हैं।

अकलंक—यदि यह बात है तो हमें भी उनके कार्यार्थ तन मन से तैयार हैं।

सब नौकर—अच्छा महाराज! पूरन आशा!! हम जाते हैं और आप के यहां पधारने की खबर रानी जी

को सुनाते हैं। आप यहीं रहना, कहीं परदेश को न जाना।

(सब का जाना)

[अङ्क २ दृश्य—६ राज महल]

रानी चिन्तातुर।

रानी-(मनमें) अहो! मुझे अभी तक भी किसी ने आ कर श्री अकलंक महाराज की खबर नहीं सुनाई और मन की चिंता पिशाचिनी न भगाई।

(तट पर आवाज़ का होना)

सुमति०-रानी जी की जय हो।

बुद्धि-चिन्ता का क्षय हो॥

रानी-(रानी नौकरों को आया जान कर) ऐ बहादुरो! इतनी देर कहाँ लगाई? क्या अकलंक जी की कोई ख़बर पाई?

नौकर-महारानी जी! ख़बर या बिल्कुल सबर!

रानी-क्या पता लग गया? साफ़ कहो और इनाम पाओ।

नौकर–श्रीमती जी! यहां से पूर्व दिशा के बन में महाराज अकलंक मय अपने शिष्यों के विराजे हुए हैं। वे तो ज्ञान की मूर्त्ति मालूम पड़ती हैं और बोलते हुए मुख से फूल से झड़ते हैं।

रानी–(खजांची से) इन्हें मुंह मांगा इनाम दो।

खजांची–जो हुक्म सरकार का!

(इनाम देना)

रानी–(नौकरों से) अच्छा इनाम पालिया दिल खुश कर लिया?

नौकर–दिल खुश कर लिया! घरको धन से भर लिया!!

रानी–अच्छा! अब जल्दी रथ और पालकी सजाओ बैलों की जोड़ी खुलवावो।

नौकर–श्रीमती जी! रथ और पालकी तैयार हैं कहिये किधर की ओर मुंह करें?

रानी–पूर्व की ओर! जहां अकलंक बैठे हैं घर छोड़॥

(रानी पालकी में बैठती हैं)

जङ्गल में पालकी का चलना

रानी–[जङ्गल में महाराज के पास पहुंच कर और पालकी से उतर कर] जैन धर्म दिवाकर ! ज्ञान प्रभाकर !! भवदीय चरण कमलों में सविनय प्रणाम है।

(नमस्कार करना)

अकलंक–धर्म वृद्धि हो ! कहिये कैसे आने का कष्ट किया ?

रानीः–

गाना

भई अब मेरी पूर्ण आश ॥ टेक ॥

दर्शन पाये आज गुरु के, मिटगई बाई दिलकी फांस ॥१

ज्ञान दिवाकर ! चलो नगर में, मेटो मेरे त्रास ॥ २ ॥

श्रीजिन भगवन् का रथ अटका, भई धर्म की हांस ॥३॥

उसको तुमही दूर करोगे, आई मैं तुम पास ॥ ४ ॥

[गद्य] महाराज नगर में चलिये और सिर का बोझ उतारिये !!

संघश्री जो बौद्धों का गुरु है उसको परास्त

करिये ॥

अकलंक-रानी जी ! इतना न घबरावो, रोकर आसूं न वहाओ यह तो जरासी वात है। शेरका मृग को मारना खेल की वात है !!

रानी-वस तो महाराज, मैं तो यही चाहती थी ! अच्छा चलिये और देरी न कीजिये।

(दोनों का प्रस्थान)

[अङ्क—३ दृश्य—१ जिन मंदिर]

रानी-[अकलंकसे] गुरु महाराज! आप से यह अरदास है कि आज राज दरबार में संघश्री के साथ शास्त्रार्थ करें और उस को परास्त करें।

अकलंक-परास्त करना! क्या सर्वज्ञ के दूत हैं? देखो रंग खिलते हैं और बौद्ध धर्म कौन २ बदलते हैं

दोनो.- गाना (प्रभु की प्रार्थना करना)

नत मस्तक होकर हम प्रभु जी!
ध्यान तुम्हारा धरते हैं॥
करो दया भक्तों पर स्वामी!
अर्ज यही हम करते है॥
ज्ञान सुधा को भूल के हम ने।
भव २ दुःख अनेक सहे।
इस ही कारण दीनबन्धु! हम
शरण तिहारी पड़ते है॥

मारग ऐसा आन बतावो।

भ्रमना छूटे चहुं गतिका॥

निश दिन चिन्तन रहे धर्म का।

पापों से हम डरते हैं॥

पूरी होवे आश हमारी।

बौद्धों का मुंह काला हो॥

"सिद्ध" धर्म का झंडा फैले।

आज "वहीं" चलते हैं॥

(दोनों का जाना)

अङ्क—२ दृश्य—२

[हिमशीतल राजा का दरबार]

(आदमी इधर उधर भर रहे हैं, शोर से महल गूंज रहा है।

बुद्धभक्त—देखो! आज जैन का नामोनिशां ही उड़ जायगा।

दूसरे—यह तो दीख ही रहा है कि धर्म का झंडा फहरायगा।

राज घराने के—न जाने रानी जी अपने मन में क्या सोचती है ? भला-संघश्री को कोई हरावे और फिर भी मूंह दिखावे ?

कुछ लोग—बौद्ध-गुरु तो पधार गये हैं परन्तु जैनियों की तरफ़ से कोई शास्त्रार्थी आवेगा तो कब आवेगा ?

बाजों की आवाज का आना।

सारी सभा—यह शोर कैसा ?

कुछ लोग—अरे भाई ! जैन विद्वान् आये हुए सुनते हैं शायद वे ही आते होंगे।

(एक दम सन्नाटा छा जाना, श्री अकलंक का आना, अपने योग्य स्थान पर बैठना)

सभापति—

उपस्थित सज्जन वृंद !

आज आप को मालूम है कि बौद्ध गुरु संघश्री और जैन धर्म मर्मज्ञ श्री अकलंक देव का शास्त्रार्थ है रानी जी के धर्म की परीक्षा और हमारे गुरु महाराज की धर्म निष्ठा का अवसर है। अब

कोई भाई हल्ला गुल्ला न करें शास्त्रार्थ को ध्यान पूर्वक सुनें, प्रथम हमारे गुरु प्रश्न करेंगे और अकलंक स्वामी उत्तर देंगे फिर स्वामी अकलंक के सवालों का जवाब हमारे पूज्य गुरुजी देंगे।

संघश्री-(अभिमान युक्त) अहो जैन मतावलम्बी! पहिले यह बता कि जैन मत में मुक्ति का स्वरूप क्या है?

अकलंक-(कोमल वाणी से) महाशय जी! आप की मिष्ट वाणी द्वारा किये गए इस बड़े उत्तम प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व मैं आपको यह बता देना चाहता हूं कि अन्य मतों के समान जैन कोई मत नहीं है जो आपने मुझे "जैन मतावलम्बी" कह कर सम्बोधित किया किन्तु यह एक धर्म है। "मत" शब्द का अर्थ है सम्मति, राय, अभिप्राय, विचार कल्पना, इत्यादि। और "धर्म" शब्द का अर्थ है स्वभाव, अथवा "जो विभाव से छुड़ा कर स्वभाव पर धरे या स्थिर करे" 'सम्मति' सत्य रूप होती है अथवा असत्य रूप भी। किन्तु 'स्वभाव' सदा

सत्य रूप ही होता है। जैन मार्ग पूर्ण जितेन्द्रिय और सर्वज्ञ वीतराग देव प्रणीत मार्ग है जो संसार की प्रत्येक वस्तु के स्वभाव को वैज्ञानिक रीति से ज्यों का त्यों बता कर और अज्ञानवश विभाव में लिप्त हुए हम संसारी जीवों को उस विभाव से छुड़ा कर स्वभाव में रमण कराने में असाधारण सहायता देता है। केवल सम्मति देकर हमें संशय विभ्रम या मोह में नहीं फंसाता। अतः जैन मार्ग "जैन मत" नहीं है किन्तु 'जैन धर्म' है।

अब मुक्ति का स्वरूप सुनिए। 'मुक्ति' शब्द का अर्थ है 'छूटना' अर्थात् संसारी जीव अनादि काल से कर्म बन्धन में बन्धा हुवा संसार में बार २ जन्म मरण करता और अनेकानेक दुःख उठाता है। इस दुःखदाई बन्धन से सदा के लिये छूट जाने का ही नाम "मुक्ति" है।

मंत्रश्री—न: . जैन धर्मियों की यह सब मिथ्या कल्पना है क्योंकि यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि संसार का

प्रत्येक पदार्थ क्षण स्थाई है। अतः जीव, पदार्थ और उस के कर्म भी क्षणस्थाई ही हैं फिर अनादि कर्म बन्ध कैसा ? और सदा के लिए मुक्ति का क्या अर्थ ?

अकलंकदेव—महाशय जी ! जरा गम्भीर दृष्टि से विचारिये। किसी द्रव्य की सत्ता का नाश कभी नहीं होता किन्तु उस की वर्त्तमान पर्याय का सदैव नाश होता रहता है अर्थात् द्रव्य की केवल पर्याय ही क्षणस्थाई है द्रव्य स्वयं क्षणस्थायी नहीं है। द्रव्य तो अपने गुण युक्त अपनी किसी न किसी पर्याय अवस्था या नाम और रूप में नित्य ही विद्यमान रहता है। जैसे स्वर्ण धातु अनेक नाम और आकार के आभूषणादि में बदलते रहने पर भी अपने पीत गुण युक्त किसी न किसी रूप में नित्य विद्यमान रहता है उसके अस्तित्व का कभी नाश नहीं होता। केवल उस की पर्याय ही बदलती रहती है अतः किसी वस्तु की सत्ता को भी

क्षणस्थाई मानना प्रत्यक्ष-विरुद्ध और विचार शून्य कल्पना है। और यदि आप के मतानुसार प्रत्येक वस्तु की सत्ता को भी क्षणस्थायी ही मान लिया जाय तो फिर आप की और सर्व सभाजनों की सत्ता भी क्षणस्थायी ही ठहरती है। अर्थात् आप और ये सर्व सभाजन क्षण २ में वस्तुतः बदल रहे हैं अतः प्रश्नकर्त्ता और उस प्रश्न का उत्तर श्रोता भी अन्यान्य जीव मानने पड़ेंगे इसी प्रकार प्रश्न श्रोता और उस प्रश्न का उत्तर दाता भी अन्यान्य जीव ही ठहरेंगे ऐसी अवस्था में आप बतायें कि कौन किस से शास्त्रार्थ कर रहा है। और कौन किस का और किस के किन वचनों का निर्णय करेगा और किस के वाक्यों के आधार पर किस की जय पराजय मानी जायगी ?

सत्यश्री-(शंकाओं के उत्तर को टाल कर) जी हां यही तो हमारा सिद्धान्त है। हम यही तो मानते हैं कि प्रत्येक क्षण जीव भी बदलता रहता है क्षण २ में

एक जीव नष्ट होकर उसी समय अन्य जीव उस की जगह उत्पन्न होता रहता है।

अकलंकदेव–महाशय जी! आपने अपने सिद्धान्त पर उत्पन्न होने वाले हमारे प्रश्नों का उत्तर तो कुछ भी न दिया किन्तु अपने जड़ मूल रहित असार सिद्धान्त ही को व्यर्थ फिर दुहरा दिया। आप से हमारे प्रश्नों का उत्तर देना नहीं बन पड़ा तो खुले शब्दों में यूं ही क्यों न कह दिया "कि हम इनका उत्तर नहीं दे सकते"। यदि ऐसा कहते भी लज्जा आती थी तो चुप ही हो रहे होते। महाराज साहिब और सभाजन स्वयं ही समझ गये होंगे कि किस का पक्ष सबल या निर्बल है।

संघश्रीः–(उत्तर न बन आने पर भी) हमारे पक्ष में कौनसी निर्बलता है? म्हारा सिद्धांत तो मेरु समान अटल है। फिर हमें चुप हो बैठने की क्या आवश्यकता है?

रानी–(संघश्री को निरुत्तर देख कर बड़ी प्रसन्नता से) अब तो रथ चलेगा? कुछ और दिल में हो तो वह

भी निकाल डालो "विष के दांत उखाड़ डालो" !!

(कुछ लोगों का भड़क कर कहना)

बौद्ध-अभी शास्त्रार्थ पूर्ण नहीं हुआ है कल और होगा। कोई हारा न जीता !

अकलंकदेव-एक दिन क्या यदि छः महीने तक भी शास्त्रार्थ करोगे तो मैं तैयार हूं तुम इंकार करो.तो लाचार हूं।

सभापति-अच्छा आजका मामला डिसमिस है। कल फिर सब लोग आवें-सुनने से न घबरावें !!

[अंक ३-दृश्य ३

मंत्री का मकान]

शेर:-क्या अभी तक जैन मुझको मूर्ख ही है सोचते ?
जो खबर होती मुझे तो कु उखाड़ने पहोंचते ॥
मुझ को हराया ज्ञान बल से अब करूं किस यत्न को।
हे देवि! तारा!! तुम पधारो दो हरा अकलंक को॥

(गद्य) हे तारा देवी! अब तो तेरा ही आसरा है तू प्रगट

हो और धर्म के अयश को खो ।

(तारा देवी का प्रगट होना)

तारादेवी–बौद्ध भक्त ! आज क्या मामला है ?

संघश्री–अकलंक ने मुझे हरा तो दिया है परंतु कल फिर भी शास्त्रार्थ की ठनी है । इसी से तुम्हें याद करी है ?

तारा–घबरावो मत ! मैं परदे के भीतर एक घड़े में बैठ जाऊंगी और उसी में से शास्त्रार्थ करूंगी । उसकी क्या मजाल जो मेरे सामने चले कुछ चाल ?

संघश्री–अच्छी बात है ! तब तो अपना ही राज है । मगर अब राजा को खबर कर देनी चाहिये कि शास्त्रार्थ परदे के भीतर से होगा–जिससे हमारा भण्डा फोड़ न होगा !

तारा–अच्छा जाओ और सब ठीक कर आवो ।

[संघश्री का राजा के पास जाना]

राजा–आइये गुरुजी महाराज पधारिये ! रात में कैसे

आना हुवा ? क्या कहीं को पयाना किया ?

संघश्री–महाराज ! इस वक्त आने की यही वजह है कि कल शास्त्रार्थ है अतः हम परदे के भीतर बैठकर करेंगे और प्रतिवादियों का मान हरेंगे !!

राजा–मेरे से कहने की क्या ज़रूरत थी ? तुम्हें अख्त्यार है !

संघश्री–आपका कहना सब कुछ ठीक है परन्तु आपसे पूछ लेना भी युक्ति युक्त है।

राजा–अच्छा जाओ और विश्राम करो।

संघश्री–अच्छा–राजन् आशीर्वाद !!

(संघश्री का जाना)

अंक ३ दृश्य ४ शास्त्रार्थ स्थल।

सभापति–

सभ्यजन !

(आज फिर शास्त्रार्थ है देखो ! इधर ही ध्यान रहे)

नागदेवी–(संघश्री की बोली में परदे के भीतर से) अहो

जैन धर्मावलम्बी ! कल तुम्हारे जिन प्रश्नों का उत्तर समय अधिक होजाने और राजमंत्री की आज्ञानुसार सभा विसर्जन करदी जाने के कारण आज के लिए छोड़ दिया गया था उसे अब भले प्रकार सुनलो । जिस प्रकार ऋण दाता और ऋणी में से किसी एक की अथवा दोनों ही की मृत्यु होजाने पर प्रत्येक की मीरासके वारिस उसके पुत्रादि को ऋण चुका लेने और चुका देने का सत्त्व प्राप्त है और इसी सत्त्व के अनुकूल हिसाब चुकता होजाने पर मूल ऋण दाता और ऋणी का हिसाब चुकता माना जाता है इसी प्रकार शास्त्रार्थ में भी प्रश्नकर्ता और प्रश्न श्रोताओं के बदलते रहने पर भी जो अन्यान्य जीव उनके स्थान में क्षण २ नवीन उत्पन्न होते रहते हैं उन्हें प्रश्नोत्तर द्वारा शास्त्रार्थ चालू रखने का पूर्ण अधिकार रहता है । इस में हानि ही क्या है ? अंत में जिसका पक्ष निर्बल या सबल होता है उसी के

अनुकूल सभाजन तो अपने २ मन में जान लेते हैं और न्यायाधीश सब को अन्तिम निर्णय सुना देता है ।

अलेक्जेंडर-महाशय जी ! सारा शास्त्रार्थ श्रवण करने वाले सभाजन और न्यायाधीश भी तो प्रति क्षण बदलते रहते हैं फिर वे किसी पक्ष के वाक्यों को पूर्ण रूप से सुने बिना ही सत्यासत्य को कैसे पहिचान या निर्णय कर सकेंगे ।

देवी-सुनो ! जिस प्रकार किसी न्यायाधीश के सामने जब कोई अभियोग चल रहा हो और बीच में ही उस न्यायाधीश की मृत्यु होजाय या राज्याज्ञा से उसकी बदली होजाय तो उसके स्थान में जो नवीन न्यायाधीश नियत होता है उसे भी उस अभियोग संबंधी निर्णय देने या सुनाने का वैसा ही अधिकार रहता है जैसा पूर्व के न्यायाधीश को प्राप्त था । इसी अधिकार के अनुकूल वह अन्त में निर्णय सुना देता है । और उस अभियोग सम्बंधी

सारी कार्यवाही को सुनने वाले भी बहुधा बदलते रहते है तो भी अपने २ मन में वे भी प्रत्येक पक्ष की निर्बलता और सबलता को समझते ही रहते हैं। इसी प्रकार सभाजनों और न्यायाधीश महाराजा के प्रति क्षण बदलते रहने पर भी शास्त्रार्थ के सत्यासत्य पक्ष का ठीक २ निर्णय अवश्य हो जायगा। इस में अड़चन ही क्या है ?

अकलंकदेव–महाशय जी ऐसा मानने मे तो कई एक अड़चनें उत्पन्न हो जाती है। प्रथम यह बात बताइये कि जब शास्त्रार्थ करने वाले जीव तो सब नष्ट होते चले गये और अंतिम निर्णय सुनने वाले जीवों ने शास्त्रार्थ किया ही नहीं फिर जय पराजय किस की हुई और कौन उसे स्वीकार करे? अन्तिम निर्णय सुनने वाले तो इसलिये जय पराजय मानने के अधिकारी नहीं है कि उन्होंने शास्त्रार्थ किया ही नहीं है। और जिन्होंने शास्त्रार्थ किया है वे निर्णय सुनाये जाने के समय संसार भर में कहीं

विद्यमान नहीं है अतः निर्णय सुनाना सब व्यर्थ ही ठहरता है और जब निर्णय सुनाना व्यर्थ ठहरता है तो शास्त्रार्थ का आडम्बर फैलाना भी व्यर्थ ही मानना पड़ेगा।

देवी—नहीं २!! ऐसा न कहो! इससे न तो शास्त्रार्थ करना व्यर्थ ठहरता है और न निर्णय सुनाना। क्योंकि हमारा मन्तव्य किसी जीव विशेष की जय पराजय दिखाने का नहीं है और इसीलिये किसी जीव विशेष को उसका निर्णय सुना कर उसे हर्षित या लज्जित करना ही अभीष्ट है किन्तु उभय पक्ष के अनेक जीवों द्वारा प्रति दिन किये गये दो परस्पर विरोधी सिद्धान्तों के सत्यासत्य का निर्णय करना ही प्रयोजनीय है अतः शास्त्रार्थ कर्ताओं और निर्णय सुनने वाले के बदलते रहने पर भी हमारे सिद्धान्त पर कोई दूषण नहीं आता।

अकलंकदेव—जब संसार की प्रत्येक वस्तु तुम्हारे सिद्धांतानुसार क्षणस्थायी है तो तुम्हारा सिद्धांत भी

तो क्षणस्थायी ही ठहरता है और जब सिद्धांत ही क्षणस्थायी है तो उसके सत्यासत्य का निर्णय करना भी गधे के सींग या आकाश के पुष्पवत् सर्वथा निर्मूल आप को मानना पड़ेगा।

देवी—नहीं, महाशय जी! ऐसा नहीं है। हम प्रत्येक शरीर धारी वस्तु को क्षणस्थायी मानते हैं सिद्धांत कोई शरीर धारी वस्तु नहीं है अतः वह क्षण स्थायी भी नहीं है।

अकलंकदेव—प्रथम तो तुम्हारे मतानुकूल तुम्हारा सिद्धांत भी क्षणस्थायी ही अवश्य ठहरेगा। जिसे मैं आवश्यकता पड़ने पर पीछे सिद्ध करूंगा। तथापि थोड़ी देर के लिये यदि आप के वचन ही स्वीकृत कर लिये जांय तो भी दो जिन पूर्वोक्त दृष्टांतों द्वारा आपने अपने पक्ष का समर्थन किया है वे दोनों दृष्टांत ही दृष्टांताभास हैं जिनसे आप के पक्ष की मूल से ही सिद्धि नहीं होती।

देवी—कैसे?

अकलंकदेव--सुनिये! ऋण सम्बंधी जो पहिला उदाहरण आपने दिया था उसमें ऋण देने वाले के वारिस के अधिकार में ऋण पत्र अवश्य विद्यमान रहता है तथा उसके साक्षी भी सभी मृत्यु को प्राप्त नहीं हो जाते। यदि ऋण देने लेने वालों के समान यह भी नष्ट हो जाते हैं और ऋण दाता व ऋणी के वारिसों को यह भी ज्ञान न हो-उसके पूर्वजों ने परस्पर कोई लैन दैन किया भी था तो एसी अवस्था में ऋण चुकाया जाना सर्वथा असम्भव हो जाता है।

इसी प्रकार दूसरा दृष्टांत जो अभियोग के सम्बंध में दिया गया था उस में यद्यपि न्यायाधीश बदल जाता है तथापि पूर्व न्यायाधीश लिखित व पत्रादि नहीं नष्ट हो जाते है जिनमें उसने प्रत्येक पक्ष और उस के साक्षी आदि के बयान को लिखा है और न वे दोनों पक्षावलम्बी ही नष्ट हो जाते है। यदि वे सब नष्ट हो जांय तो नवीन न्यायाधीश उस

अभियोग का कोई निर्णय न दे सकेगा। और न देगा। अतः आपका क्षणिकवाद इन दूषित दृष्टांतों से लेश मात्र भी सिद्ध नहीं होता।

देवी—यद्यपि पूर्वोक्त उदाहरणों में ऋण पत्रादि प्रत्यक्ष रूप से नष्ट नहीं हुए किन्तु परोक्ष रूप से हमारे सिद्धान्तानुकूल वे सब भी स्वयं तो नष्ट अन्यान्य पदार्थ प्रति ही हो जाते हैं किन्तु उनके स्थान में अज्ञात रूप से दीपशिखा के समान ठीक वैसे ही अन्यान्य पदार्थ प्रतिक्षण उत्पन्न होते रहते हैं। इसीलिए उत्पन्न हुए पत्रादि के आधार पर ऋण चुकाने का और अभियोग सम्बंधी सारे कार्य का निबटारा बड़ी सुगमता से हो जाता है। अतः हमारे दोनों दृष्टांत पूर्णतः निर्दोष हैं।

अकलंकदेव—आपने अपने दोनों दृष्टान्तों को निर्दोष सिद्ध करने में जो हेतु दिया है वह स्वयं ही असिद्ध है अतः आपकी इस सिद्धी में दृष्टांताभास नामक दूषण तो दूर न हुआ किन्तु असिद्ध हेत्वाभास

नामक एक अन्य दूषण और उत्पन्न होगया—
आपने अपने दोनों दृष्टान्त... ... ...

राजमंत्री-(बात काट कर) आज तो शास्त्रार्थ होते २ समय
अधिक होगया अब अपना उत्तर कल दीजिये !

राजमंत्री-(उपस्थित सभाजनों से) उपस्थित सज्जनो !
समय अधिक हो जाने से अब सभा विसर्जित की
जाती है आज के शास्त्रार्थ का शेष भाग का प्रारम्भ
आज ही के समय पर कल किया जायगा ।

(सभा का विसर्जन होना)

अंक ३—दृश्य ५

अकलंक का शयन भवन ।

अकलंक-(छह मास नित्यप्रति शास्त्रार्थ होते बीत जाने
पर अपने मन में) क्या बात है ? मेरे सामने
वादी छह महीने तक डटा रहे । शेर के सामने
बकरी का पेट तना रहे !!

गाना।

आता नहीं कुछ भी समझ में छह महीने हो गये।
शास्त्रार्थ वैसाही बना है कामयाब नहीं हुये॥
क्या शक्ति है इन बौद्ध में जो ये करें अब सामना।
"दाल मे काला" दिखाई देत है कुछ भी मीता!!
हे प्रभो! त्रैलोक्य के ज्ञाता हमारी सुध करो।
क्या मामला इस वाद में है साफ २ बयां करो॥
क्या परीक्षा देव मेरी कर रहे छिप कर यहां।
तो सामने आकर खड़े हो मैं दिखाऊं कुछ यहां॥

(इतना कहते हुए मन में एक दिव्य विचार का प्रकाश उत्पन्न होने पर) अहा! मेरे विचार में तो संघश्री की बोली में उसकी ओर से कोई देव परदे में छिप कर मेरे साथ शास्त्रार्थ कर रहा है। अथवा कोई देवी कर रही है। नहीं तो परदे में बैठ कर शास्त्रार्थ करने का अन्य क्या प्रयोजन? अच्छा कल शास्त्रार्थ प्रारम्भ होने के समय इस की खोज करूंगा। मन की आशंका को मैं संघश्री

से कहूंगा कि आप अपना प्रश्न दुहराइये। फिर से मुझे सुनाइये !! यदि उसकी ओर से वास्तव में किसी देव या देवी द्वारा शास्त्रार्थ किया जारहा होगा और इस प्रकार मुझे धोखा दिया जा रहा होगा तो वह देव या देवी अपने प्रश्न के शब्दों को उस समय न दुहरा सकेंगे—छुपी देवी का महात्म तकेंगे बस इसी से सब परीक्षा हो जायगी। मन की आशंका खोजायगी।

(उस समय में इस दिव्य विचार के प्रकाश से बहुत ही सन्तुष्ट होकर अकलंक देव ने अब हर्ष पूर्वक विश्राम किया)

[अङ्क—३ दृश्य ६ शास्त्रार्थ भवन

राजमंत्री—उपस्थित सज्जनो ! शास्त्रार्थ के सुनने में मन को लगाओ ! अब कोलाहल न मचाओ। (संघश्री से) हां ! अब आप अपना कोई प्रश्न कीजिये और श्री अकलंक देव से उत्तर लीजिए !

देवी—(संघश्री की बोली में परदे में से) अहो अकलंक-

देव ! अब यह बताओ कि पाप पुण्य तुम किसे मानते हो ? और उनका फल जिस नरक या स्वर्गादिक में भोगना तुम बताते हो उस तुम्हारे नरक या स्वर्ग का क्या स्वरूप है ।

अकलंदेव–क्या कहा फिर से दुहराना ?

देवी–(चुप)

अकलंक०–(परदे के भीतर जाकर) देखूं तो इसमें क्या है ? (घड़े में लात मार कर हैं ! है !! तू कौन ?

तारादेवी–(हाथ जोड़ कर) महाराज ! कृपानिधा !! क्षमा करिये–मैं ही आपके सामने छह महीने तक उद्धता करती रही ?

अकलंक०–देख लिया ! हो लिया शास्त्रार्थ !! जो मन में कुछ और हो तो उसे भी निकाल डालो ! और आज से पीछे किसी जैनधर्मीके साथ शास्त्रार्थ करने का नाम मुंह से न निकालो ।।

(सभा के लोग चकित होते हैं और दातों तले उंगली चबाते हैं जैन धर्म की जय से शास्त्रार्थ भवन को गुंजादेते हैं)

राजा–हम तो आज से ही श्रीजिन चरण–कमलों में सर झुकाते है। और बौद्ध–धर्म को छोड़ते हैं॥

मंत्री–हमतो राजा के डर से बौद्ध होरहे थे। हमतो जैनी के जैनी है ही–वीतराग देव, सर्वज्ञ कथित शास्त्र, निष्परिग्रही गुरु के मानने वाले है ही॥

सभा के लोग–हम भी आज से श्रीजैन धर्म अंगीकार करते हैं उन्ही सच्चे देवाधिदेव वीतराग भगवान् को वारम्बार नमस्कार करते है।

(सब का एक २ करके जैनी होना)

अकलंक–मेरे भाइयो। आप मन में विचारे कि पूज्य देव कौन हो सक्ता है?

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथाह्याप्तता भवेत्॥

अर्थात जो सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशी हो वही देव हो सक्ता है–वह सृष्टि का कर्ता–हर्त्ता–भी नहीं है–जो अल्पज्ञ, कषायादि कर मलीन, गदादि चिन्हों

कर सहित, परिग्रही देव हैं ये केवल पत्थर की नौका के समान हैं-ऐसे देवों को देव मानना खपुष्पवत् अर्थात् आकाश के फूल की तरह है।

[सभा का विसर्जन होना]

[अङ्क ३—दृश्य ७ जिनमंदिर]

मदन सुंदरी की-प्रार्थना (गाना)

(चाल-गजल-इलाजे दर्द दिल तुमसे मसीहा हो नहीं सकता)

तुम्हारा नाम जो लेता वही तुमसा है बन जाता ॥टे०
स्वर्ग की संपदा पाना, कठिन क्या है प्रभो! हम को।
तुम्हारा ध्यान करने से कि जब है मुक्तिको पाता ॥१
न कुछ भी राग है तुम में-न है कुछ द्वेष ही मन में।
लंघाते पार इक क्षण में, तुम्हें जो भाव से भाता।२
"सिद्ध" कारजप्रभो तुमने, मेरा अब कर दिखाया है।
श्री अकलंक को भेजा-धरम की नाव है खेता।३॥

(गद्य)-हे प्रभो! मेरी कामना पूरी हुई, मनोभावना आप में रत हुई। अब मैं रथोत्सव आनन्द पूर्वक करती

हूं और दुनियां को धर्म पर लगाती हूं ॥

रथ यात्रा-निकलना—

अकलंक गाते हैं—

(चाल:—जगदीश यह विनय है जब प्राण तन से निकलें ।

प्रभु वीर यह विनय है, जब प्राण तन से निकलें।
तव नाम जपते जपते, ये प्राण तन से निकलें ।टे०।
सम्यक्त्व ज्ञान चारित इन युक्त आत्मा हो ।
मिथ्यात्व छूट जावे जब प्राण तन से निकलें ॥१॥
उत्तम क्षमादि धारक, मन धर्म में लगा हो ।
शुभ भावनाएं भाऊं, जब प्राण तन से निकलें ।२।
ये क्रोध मान माया, अरु लोभ जो बताया ।
चारों कषाय छूटें, जब प्राण तन से निकलें ॥३॥
समता सुधा को पीकर, छोड़ूं मैं राग द्वेषा ॥
तपशील से रंगा हूं, जब प्राण तन से निकलें ।४।
धर्मार्थ देह छोड़ूं—धर्मार्थ नेह तोड़ूं ।
मैं "सिद्ध" पद को चाहूं, जब प्राण तन से निकलें ।५।

सब आदमी गाते हैं-

गाना-

अकलंकदेव ! तुमने रस्ते हमें लगाया ।
रस्ते हमें लगाया, अज्ञान को भगाया ॥ टे०॥
बौद्धों को जीत करके डंका-धरम बजाया ।
मारी जो लात घट पै तारा को यूं भगाया ॥ १ ॥
कितने ही जीव डर से बौद्धों का नाम लेते ।
अब पोल पट्टी उनकी खुलने से सौख्य पाया ।२।
भगवन् ! हमें बतादो, "धर्मार्थ-प्राण देना" ।
होगी तरक्की, तब ही जब यह सबक सिखाया ।३।
तुम न्याय सूर्य से अब तत्वों को है दिखाया ।
गावेगा "सिद्ध कब तक गुण का न पार पाया ।४।

(अकलंक के ऊपर, आकाश से पुष्प वृष्टि का होना)
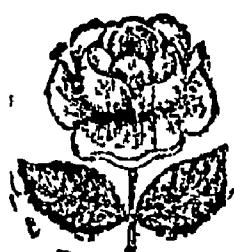
उपसंहार।

(पद पं० भागचंद जी कृत.)

बुधजन पक्षपात तज देखो।
सांचा देव कौन है इन में ॥ टे० ॥

ब्रह्मादंड कमंडलु धारी,
स्वांत भ्रांत वश सुरनारिन में।
मृग छाला माला मौंजी पुनि,
विषयासक्त निवास नलिन में ॥

शंभू खट्वा अंग सहित पुनि,
गिरिजा भोगमगन निशदिन में।
हस्त कपाल व्याल भूषन पुनि,
रुंडमाल तन भस्ममलिन में ॥ २ ॥

विष्णु चक्रधर मदन बान वश,
लज्जा तजि रमता गोपिन में।
क्रोधानल जाज्वल्यमान पुनि,
तिन के होत प्रचंड अरिन में ॥ ३ ।

श्री अरहंत परम वैरागी,

दूपन लेश प्रवेश न जिन में।

"भागचंद" इनको स्वरूप यह,

अब कहा पूज्यपनो है किन में ?

॥ समाप्तोऽयं ग्रंथः ॥

आवश्यक-सूचना।

निम्न पुस्तकें हमारे "भूषण भवन" कार्यालय से मिल सक्ती है-कमीशन पत्र व्यवहार से तै कीजिये।

१. अकलंक नाटकः-श्री अकलंक व निष्कलंक का जीवन परिचय सुन्दर छपाई मोटा व चिकना कागज़ मूल्य केवल ।।)

२. पुष्प वाटिका-प्रथम भागः-जोशीले एवं धार्मिक व लौकिक भजनों की रचना मूल्य ≈)

३. समायिक चालीसा (कविवर स्व० यति जैन सुखदास कृत) मूल्य -)

४. त्रिया-(ट्रैक्ट) ४) रु० सैकड़ा।

मिलने का पता:-

१-पं० सिद्धसेन जैन गोयलीय

मैनेजर "भूषण भवन" कार्यालय रिवाड़ी (गुड़गावां)

२-ला० रामजी दास, हज़ारी लाल जैन बुकसेलर एण्ड स्टेशनर्स रिवाड़ी।